अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका — जून २०२३

श्रीमाँ के साथ सामीप्य

अग्निशिखा जून २०२३ वर्ष ५३, अंक ११, पूर्णांक ६३४

विषय-सूची

श्रीमाँ के साथ सामीप्य

सन्देश/सम्पादकीय		३
श्रीमाँ के साथ सच्चा सम्बन्ध		५
श्रीमाँ के साथ आन्तरिक सम्पर्क		९
'उन' तक पहुँचने का उचित तरीक़ा		११
श्रीमाँ का प्रेम		१७
श्रीमाँ के साथ आन्तरिक एकत्व तथा बाह्य सम्बन्ध		१९
"मैं तुम्हारे साथ हूँ"		२८
पुरोधा : दैनन्दिनी		३६
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : नींद के विषय में	नवजातजी	३९
एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४१
एकान्त (कविता)	शाम्भवी	४४
दोनों की प्राप्ति हो गयी!	वन्दना	४५

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

पूर्ण रूप से सच्चा होने का अर्थ है, एकमात्र दिव्य सत्य की कामना करना, माँ भगवती को अधिकाधिक आत्म-समर्पण करना, इस एक अभीप्सा से भिन्न अन्य सभी व्यक्तिगत माँगों और कामनाओं का त्याग कर देना, जीवन के प्रत्येक कर्म को भगवान् के चरणों में उत्सर्ग कर देना और कर्म को भगवान् के द्वारा दिया गया समझ कर करना तथा उसमें अहंकार को न आने देना। यही दिव्य जीवन का आधार है।

कोई भी व्यक्ति तुरन्त ऐसा नहीं बन सकता; पर, कोई यदि सतत अभीप्सा करता रहे और सच्चे हृदय तथा सत्य-संकल्प के साथ निरन्तर भागवत शक्ति की सहायता की पुकार करे तो वह अधिकाधिक इस चेतना में बढ़ता रहेगा।

श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : श्रीमाँ के प्रति अपने-आपको खुला रखना ही पूर्ण योग की कुञ्जी है, उन्हें ही धरती को रूपान्तरित करने का कार्य सौंपा गया है, और वे ही हैं वह आद्या-परमा शक्ति, वह भगवती माता जो रूपान्तरकारी प्रक्रिया में हमें दीक्षा देती हैं, आरम्भ से अन्त तक हमारा हाथ पकड़े रखती हैं, उन्हीं के पास है सभी तालों को खोलने की चाबी। मानव के भौतिक मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि अब जब उनके भौतिक शरीर का सहारा हमसे हट गया है तब हम कैसे साधें उनके साथ सम्पर्क, कैसे पायें उनका दिग्दर्शन?

यह अंक उसी सामीप्य को साधने और उनके साथ सामीप्य बनाये रखने का रहस्य खोलने में हमारी मदद करेगा।

वे हैं श्रीमाँ के बालक और उनके सबसे समीप जो उनके प्रति उद्‌घाटित हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके निकट हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं—वे नहीं जो शारीरिक रूप से उनके सबसे पास होते हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४९६ **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ के साथ सच्चा सम्बन्ध

माँ तथा बालक

श्रीमाँ के प्रति हमारा सच्चा सम्बन्ध क्या है—माँ का बालक के साथ सम्बन्ध?

माँ का बालक के साथ सम्बन्ध पूर्ण, निष्कपट, सरल भरोसे, प्रेम तथा निर्भरता का सम्बन्ध होता है।

*

एक नियम

तुम्हारे लिए मैं एक नियम लागू कर सकता हूँ, "ऐसा कोई काम मत करो, कोई बात न कहो या सोचो जिसे तुम श्रीमाँ से छिपाना चाहो।" तुम्हारे अन्दर जो आपत्तियाँ उठीं—प्राण से उठीं न?—कि श्रीमाँ के सम्मुख "इन तुच्छ चीज़ों" को क्यों रखा जाये? तो उनका यही उपर्युक्त जवाब है। भला तुम यह क्यों मानते हो कि माताजी इन चीज़ों से परेशान हो जायेंगी या वे उन्हें तुच्छ चीज़ें मानती हैं? अगर **सारा** जीवन ही योग है तो किसे तुच्छ या महत्त्वहीन कहा जायेगा? अगर तुम अपनी किसी क्रिया या अपनी प्रगति के किसी मामले को उचित मनोवृत्ति के साथ श्रीमाँ के सम्मुख रखो, यानी उनकी सुरक्षा, 'सत्य' के प्रकाश, उनकी उस 'शक्ति' के किरण-तले रखो जो रूपान्तर के लिए कार्य कर रही है तो भले श्रीमाँ कोई मौखिक उत्तर न दें फिर भी, उनकी वे किरणें तत्काल उस मामले को अपने हाथ में ले लेती हैं। जब वे क्रिया करती हैं और तुम्हारे अन्दर की कोई भावना तुम्हें उस पर कान देने से मना करे तो समझ लो कि यह प्राण की कोई चाल है जो 'प्रकाश' की किरणों तथा 'शक्ति' की क्रियाओं से बचना चाहती है। तुम यह भी देख सकते हो कि अगर तुम स्वयं को श्रीमाँ के प्रति उद्घाटित कर दो, यानी अपनी क्रियाओं तथा गतियों को उनके निरीक्षण में रख दो तो इससे तुम उनके साथ एक सम्बन्ध जोड़ लोगे, एक आत्मीय सम्बन्ध। वैसे उनकी शक्ति आश्रम के वातावरण पर छायी रहती है, और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रत्येक साधक को सतत सहारा देती रहती है।

निस्सन्देह ऐसा तभी होता है जब तुम इस उद्घाटन के लिए स्वयं को

प्रस्तुत अनुभव करो और सर्वांगीण रूप से अपने-आपको 'उनके' चरणों में निवेदित कर दो। क्योंकि उद्घाटन तभी सम्पूर्ण तथा फलप्रद होता है जब यह सच्चाई के साथ, सहज रूप से तुम्हारे अन्दर से आये।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४४९

सच्चा आध्यात्मिक सम्बन्ध

आज सवेरे 'क' के द्वारा मैंने श्रीमाँ को एक पत्र भेजा था, लेकिन मुझे उसका कोई उत्तर नहीं मिला। क्या मैं कुछ ग़लत कर बैठा हूँ? उनसे दो शब्द की अपेक्षा कर रहा हूँ मैं, बहुत अधिक दुःख भोग रहा हूँ।

माँ ने 'क' के द्वारा तुम्हें उत्तर भेजा था कि तुम जितना आराम करना चाहते हो कर सकते हो—बहरहाल, उन्होंने यह बात तुम तक पहुँचाने को उससे कहा था; मुझे आशा है कि उसने ऐसा किया होगा।

इस तरह की भावनाओं से हमेशा पल्ला झाड़ लेना चाहिये, इनके साथ और कुछ नहीं किया जा सकता। भगवान् के साथ, माँ के साथ तुम्हारा सम्बन्ध प्रेम, विश्वास, भरोसे, प्रत्यय तथा समर्पण का होना चाहिये—और किसी भी तरह का सामान्य प्राणिक सम्बन्ध साधना की विरोधी प्रतिक्रियाएँ ले आता है—कामना, दम्भी अहंकार, माँग, विद्रोह और अज्ञानी राजसिक मानव स्वभाव की उन सभी विक्षुब्धताओं को ले आता है जिससे साधना का लक्ष्य छिटक जाता है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४५०-५१

आध्यात्मिक जीवन का पहला सिद्धान्त है—आन्तरिक जीवन बिताना और अन्दर से भौतिक अस्तित्व को पुनः गढ़ना। लेकिन कितने ही लोग बाहरी जीवन जीने का आग्रह करते हैं, तब माँ के साथ उनका सम्बन्ध बाहरी अन-आध्यात्मिक प्रकृति की सामान्य प्रतिक्रियाओं से शासित होता है।

*

आपने कुछ लोगों को माँ के साथ "घनिष्ठ आन्तरिक सम्बन्ध" की बात लिखी है। मैं जानना चाहता हूँ कि उनके साथ सबसे सच्चा और सबसे यथार्थ सम्बन्ध कौन-सा है। उनके साथ अन्तरात्मा का

सम्बन्ध क्या एकमात्र सच्चा सम्बन्ध नहीं है? अन्तरात्मा का सम्बन्ध है क्या? मैं उसे कैसे पहचानूँ?

आन्तरिक (अन्तरात्मा) सम्बन्ध का अर्थ है कि व्यक्ति माँ की उपस्थिति का अनुभव करता है, सारे समय उन्हीं की ओर मुड़ा रहता है, इस बात से अभिज्ञ होता है कि उनकी शक्ति क्रिया कर रही, पथ-प्रदर्शन दे रही और सहायता कर रही है, वह उनके प्रति प्रेम से भरा होता है और भले वह शारीरिक रूप से उनके पास हो या न हो, लेकिन हमेशा एक महान् समीपता का अनुभव करता है—यह सम्बन्ध मन, प्राण तथा आन्तरिक भौतिक को तब तक अपने हाथ में लिये रहता है जब तक कि वह अपने मन को माँ के समीप, अपने प्राण को उनके प्राण के साथ सामञ्जस्य में, अपनी एकदम से भौतिक चेतना को उनकी चेतना से लबालब भरा हुआ अनभुव नहीं करता। ये सभी आन्तरिक ऐक्य के तत्त्व हैं, न केवल भावना में बल्कि स्वभाव में भी ये उतर आते हैं।

मुझे याद नहीं कि मैंने क्या लिखा था, लेकिन यह आन्तरिक घनिष्ठ सम्बन्ध है जो उस बाहरी सम्बन्ध से उलटा होता है जो केवल इसी बात में सीमित होता है कि व्यक्ति बाहरी भौतिक स्तर पर माँ से कैसे मिल रहा है। यह घनिष्ठ आन्तरिक सम्बन्ध पूरी तरह से सम्भव है—और सच भी है—भले व्यक्ति केवल उन्हें प्रणाम तथा ध्यान के समय देखे और साल में केवल एक बार सम्भवतः अपने जन्मदिन पर ही उनका दर्शन प्राप्त करे।

तुम माँ के बालक हो और माँ का अपनी सन्तानों के प्रति प्रेम असीम होता है और वे उनके स्वभाव के दोषों को धीरज के साथ सहती रहती हैं। माँ के सच्चे बालक बनने की कोशिश करो : वह चीज़ तुम्हारे अन्दर है, लेकिन तुम्हारा बाहरी मन छोटी-छोटी, तुच्छ चीज़ों में रमा रहता है और बहुत, बहुत बार बातों का बतंगड़, राई का पहाड़ बना देता है। तुम्हें माँ को केवल स्वप्न में नहीं बल्कि अपने साथ तथा अपने अन्दर हमेशा, हर समय देखना तथा अनुभव करना सीखना चाहिये। तब तुम्हारे लिए स्वयं पर नियन्त्रण रखना तथा स्वयं को बदलना सरल हो जायेगा—क्योंकि उनके वहाँ होने के कारण तुम्हारे लिए वे यह करने में सक्षम होंगी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४५३-५४, ४५२-५३

हर एक की परवाह करती हैं वे जगज्जननी

तुम्हारा यह विचार कि श्रीमाँ और सबकी अपने बच्चों की तरह देखभाल करती हैं और तुम्हारी परवाह नहीं करतीं, स्पष्ट ही एक सर्वथा निराधार विचार है। तुम्हारे प्रति अपने प्रेम इत्यादि में वे उतनी ही वात्सल्यपूर्ण हैं जितनी किन्हीं दूसरों के प्रति, और बहुतों की अपेक्षा तो तुम्हारे प्रति अधिक वात्सल्यमयी हैं। निश्चय ही, यह माँ की भावनाओं में विद्यमान किसी वास्तविक तथ्य से सम्बन्ध नहीं रखता, पर मैंने देखा है कि इस प्रकार का विचार साधकों, विशेषकर साधिकाओं के मनों में तब 'सदा ही' उठा करता है जब वे निराश हो जाते हैं या अपने बाहर से आने वाले सुझावों पर ध्यान देते हैं। वे सदा वही बात कहते हैं जो तुमने कही है, "आप मेरे अलावा सबसे प्रेम करती हैं और सबकी परवाह करती हैं; स्पष्ट ही मैं योग के अयोग्य हूँ, अन्यथा आप मुझे इस प्रकार अपने से दूर न रखतीं। मुझे कभी कुछ भी प्राप्ति नहीं होने वाली। केवल आपको कष्ट देने के लिए यहाँ रहने से क्या लाभ? मैं यहाँ रहूँ ही क्यों?" परन्तु जब चैत्य पुरुष अच्छी तरह जाग जायेगा, तब ये विचार, यह निराशा, ये अशुद्ध धारणाएँ अवश्य ही दूर हट जायेंगी। अतः, जो कुछ तुम अनुभव कर रहे हो वह है बस यही निराशा और इसके द्वारा लाये गये ग़लत सुझाव; यह श्रीमाँ की भावनाओं में या तुम्हारे प्रति उनके व्यवहार में विद्यमान किसी वास्तविक तथ्य से सम्बन्ध नहीं रखता। जैसे-जैसे तुम्हारी अन्तरात्मा अधिकाधिक आगे आती जायेगी वैसे-वैसे और चीज़ों के साथ यह निराशा भी हट जायेगी, क्योंकि तुम्हारी अन्तरात्मा यह जानती है कि उसे माँ से प्रेम है और माँ तुमसे प्रेम करती हैं; वह मन और प्राणिक प्रकृति को धोख़ा देने वाले सुझावों से अन्धी नहीं हो सकती। अतः, इन विचारों में मत पड़े रहो जिनका कोई आधार नहीं, बल्कि जो केवल निराशा का भाव या बाहर से आया सुझाव-मात्र है। अपने अन्दर स्थित चैत्य पुरुष को विकसित होने दो। शिशु और भगवती माँ का सम्बन्ध वहाँ तुम्हारी अन्तरात्मा में है ही; वह अपने को तुम्हारे मन, प्राण और भौतिक चेतना में तब तक अनुभव कराता रहेगा जब तक वह सम्पूर्ण चेतना का एक ऐसा आधार नहीं बन जाता जिस पर सारी साधना दृढ़ और सुरक्षित हो सके।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४५४-५५

श्रीमाँ के साथ आन्तरिक सम्पर्क

माँ के साथ अपने अन्तर में रहो

मैं अपने कमरे में अकेले बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था, अपने अन्दर श्रीमाँ की चेतना की पैठ का अनुभव कर रहा था। जब मैं 'क' से मिलने गया तो मुझे बेचैनी का अनुभव हुआ और माँ के साथ अपना आन्तरिक सम्पर्क खो बैठा मैं। लोगों से मिलना-जुलना आन्तरिक अनुभूति को नष्ट कर देता है, लेकिन मैं हमेशा अकेला भी तो नहीं रह सकता। करने-लायक़ सबसे अच्छी चीज़ क्या है?

तुम्हें अपने अन्दर श्रीमाँ के साथ, उनकी चेतना के सम्पर्क में रहना सीखना होगा, और दूसरों के साथ केवल अपनी बाहरी, ऊपरी सतह पर मिलो।

शान्ति की आवश्यकता

साधना के लिए सबसे अधिक आवश्यक चीज़ है, शान्ति, अचञ्चलता, विशेष रूप से प्राण में अचञ्चलता—ऐसी शान्ति जो परिस्थितियों या परिवेश पर नहीं निर्भर करती बल्कि निर्भर करती है उच्चतर चेतना के उस आन्तरिक सम्पर्क के साथ जो भगवान् की, श्रीमाँ की चेतना है। जिनके अन्दर यह नहीं होती या जो इसे पाने की अभीप्सा नहीं करते वे यहाँ आकर भले दस-बीस साल रह जायें, लेकिन फिर भी हमेशा अशान्ति और संघर्ष से भरे रहेंगे—जो अपना मन और प्राण श्रीमाँ की शक्ति तथा शान्ति के प्रति उद्घाटित कर देते हैं, वे सबसे अधिक कठिन और सबसे अधिक अप्रिय कार्य तथा बुरी-से-बुरी अवस्थाओं में भी इस शान्ति को पा सकते हैं।

अन्दर की ओर मुड़ो

मैं हर एक के साथ अपने सभी सम्बन्ध छोड़ देना चाहता और केवल श्रीमाँ के अन्दर निमग्न हो जाना चाहता हूँ। कृपया मुझे बतलाइये कि सभी बाधाओं पर विजय पाने के लिए मुझे किन नियमों का अनुसरण करना होगा। वर दीजिये कि बाहरी तथा आन्तरिक दोनों तरह से माँ मेरी सहायता करें।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि आन्तरिक रूप से श्रीमाँ के प्रति,

केवल उन्हीं के प्रति मुड़ा जाये। बहुत से बाहरी सम्पर्कों का न होना केवल इसमें मदद करने में सहायक होगा—लेकिन लोगों के साथ एकदम से सभी सम्पर्कों से कतराना न तो आवश्यक है, न ही वाञ्छनीय। आवश्यक यह है कि अपने-आपको बाहर छितरा कर नहीं बल्कि उचित आन्तरिक चेतना के साथ सम्पर्क साधा जाये—उन सम्पर्कों को सतह की वस्तु मान कर उनके साथ बर्ताव किया जाये—न उनसे आसक्त हुआ जाये और न किसी भी तरह उनमें निमग्न।

अवसाद और कल्पना

अगर तुम माँ का सम्पर्क हमेशा पाना चाहते हो तो हर हालत में तुम्हें अवसाद और उन मानसिक कल्पनाओं से एकदम पीछा छुड़ाना होगा जो उसे लाती हैं। रास्ते में आड़े आने वाली बाधाओं में यह सबसे बड़ी बाधा है।

*

अगर ऐसा है तो सम्भवतः इसका कारण यह है कि तुम बाहर रह रहे हो और स्वयं को बाहरी सम्पर्कों से परेशान होने की अनुमति दे रहे हो। जब तक व्यक्ति अपने अन्दर निवास नहीं करता, तब तक स्थायी प्रकार की प्रसन्नता अनुभव नहीं कर सकता। कार्य, भावना—सभी को श्रीमाँ के प्रति समर्पित करना चाहिये, अपने बारे में किसी भी विचार के बिना केवल उन्हीं के लिए कार्य करना चाहिये, अपनी निजी युक्तियों, वरीयताओं, भावनाओं, पसन्द और नापसन्दगियों को बीच में लाये बिना बस उनके अर्पण कर दो अपने सभी कर्म। अगर व्यक्ति पसन्दों-नापसन्दों इत्यादि चीज़ों में फँसा रहे तो पग-पग पर मन या प्राण से उसकी रगड़ होती है, अगर ये अपेक्षाकृत शान्त हों तो शरीर और स्नायुओं में स्पन्दन उठने लगते हैं। शान्ति तथा हर्ष केवल तभी स्थायी बन सकते हैं यदि व्यक्ति श्रीमाँ के साथ अन्तर में रहे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४५७-६० **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ के साथ सम्पर्क सभी आवश्यक उपलब्धियों तथा सभी सच्ची अभीप्साओं की परिपूर्ति की ओर ले जायेगा।

श्रीअरविन्द

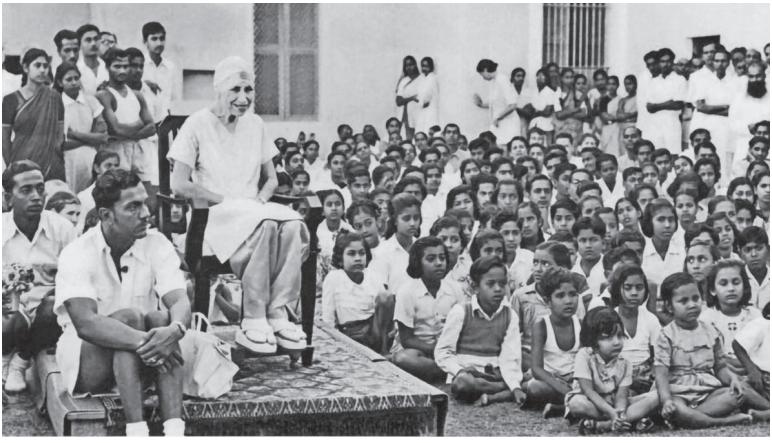

'उन' तक पहुँचने का उचित तरीक़ा

श्रीमाँ के लिए सच्चा प्रेम

माता और बालक के बीच सम्बन्ध का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि माँ बच्चे से प्यार करे बल्कि बच्चे को भी माँ से प्यार करना चाहिये और उसका आज्ञाकारी होना चाहिये। तुम श्रीमाँ का सच्चा बालक बनना चाहते हो, लेकिन इसके लिए पहली चीज़ है कि स्वयं को उनके हाथों में सौंप दो, उन्हें तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करने दो और उनकी इच्छा का अनुसरण करो—न उसकी उपेक्षा करो और न ही उनके विरुद्ध विद्रोह करो। तुम यह सब अच्छी तरह जानते हो—इसे तुम अनदेखा क्यों करते हो?

बालक का प्राण जिस किसी भी चीज़ की माँग करे उसे पूरा कर देना —यह सच्चे मातृप्रेम का अंग नहीं है, क्योंकि वह जानती है कि यह उसके लिए बहुत ही बुरा होगा। अपने प्राणिक आवेगों पर कान मत दो, बल्कि अपनी सच्ची समझ का अनुसरण करो और स्वयं को श्रीमाँ की इच्छा का एक माध्यम बनाओ—क्योंकि उनकी इच्छा है कि तुम्हें सदैव अपनी सच्ची सत्ता में विकसित होना चाहिये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६०

भगवान् की ओर मुड़ा हुआ प्रेम

जो प्रेम भगवान् की ओर मुड़ा होता है उसे कभी वह सामान्य प्राणिक भाव नहीं होना चाहिये जिसे साधारणतया लोग प्रेम के नाम से पुकारते हैं; क्योंकि वह प्रेम नहीं है, बल्कि वह तो एक प्राणिक वासना है, आत्मसात् करने की सहज वृत्ति है, अधिकार करने और एकाधिकार जमाने की प्रेरणा है। केवल यह नहीं कि यह दिव्य प्रेम नहीं है, बल्कि इसे कम-से-कम मात्रा में भी योग के साथ नहीं मिलने देना चाहिये। भगवान् के लिए जो सच्चा प्रेम है वह है आत्मदान, उसमें कोई माँग नहीं होती, वह आज्ञाकारिता और समर्पण के भाव से भरपूर होता है। वह कोई दावा नहीं करता, कोई शर्त नहीं लादता, कोई मोल-तोल नहीं करता, ईर्ष्या या अभिमान या क्रोध के कारण किसी प्रकार का आक्रमण नहीं करता—क्योंकि ये सब चीज़ें उसकी रचना में ही नहीं होतीं। बदले में स्वयं भगवती माँ भी अपने-आपको देती हैं, पर देती हैं खुले तौर पर—और यह प्रकट होता है एक आन्तरिक आत्मदान के रूप में—उनकी उपस्थिति तुम्हारे मन में, तुम्हारे प्राण में, तुम्हारी भौतिक चेतना में विद्यमान रहती है, उनकी शक्ति दिव्य प्रकृति के अन्दर तुम्हारा पुनःसृजन करती है, तुम्हारी सत्ता की सभी गतिविधियों को अपने हाथ में लेती और उन्हें पूर्णता और सिद्धि की ओर ले जाती है, उनका प्रेम तुम्हें घेर लेता है और अपनी गोद में उठा कर तुम्हें भगवान् की ओर ले जाता है। इसी बात को अपने समस्त अंगों में—एकदम स्थूल अंग तक में अनुभव करने और प्राप्त करने की अभीप्सा तुम्हें करनी चाहिये और इस विषय में न तो समय की कोई सीमा है और न परिपूर्णता की। अगर कोई वास्तव में इस बात की अभीप्सा करे और इसे पा ले तो फिर किसी दूसरी माँग अथवा किसी दूसरी अतृप्त कामना के लिए कोई स्थान नहीं रह जाना चाहिये। और अगर कोई सचमुच अभीप्सा करे तो फिर वह, जैसे-जैसे उसकी पवित्रीकरण की क्रिया आगे बढ़ती है और उसकी प्रकृति में आवश्यक परिवर्तन आता जाता है वैसे-वैसे वह उसे निश्चित रूप से पाता ही है।

समस्त स्वार्थपूर्ण माँगों और कामनाओं से अपने प्रेम को शुद्ध रखो; तुम देखोगे कि उसके प्रत्युत्तर में तुम इतना अधिक प्रेम पा रहे हो जितना कि तुम सहन और आत्मसात् कर सकते हो। CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६१

श्रीमाँ तथा दूसरों के लिए प्रेम

श्रीमाँ के लिए प्रेम, जिसे तुम इतने प्रबल रूप में अनुभव कर रहे हो और जिन लोगों के साथ तुम रह रहे या काम कर रहे हो उनके साथ सामञ्जस्य और स्नेह का यह झुकाव—ये दोनों ही चैत्य सत्ता से आते हैं। जब चैत्य अपने प्रभाव को तीव्र कर देता है, माँ के प्रति यह प्रेम प्रबल हो उठता है और यही स्वभाव को बदलने में प्रमुख भूमिका निभाता है। इसके साथ ही दूसरों के प्रति सद्भावना, सामञ्जस्य, दयालुता या स्नेह की भावना भी ऊपर उठ आती है और यह इतनी वैयक्तिक नहीं होती, क्योंकि यह परिणाम होती है माँ के सभी बच्चों की अन्तरात्मा के साथ तुम्हारी अन्तरात्मा का घनिष्ठतम सम्बन्ध। इस चैत्य भावना में कोई हानि नहीं है, इसके विपरीत, यह सुख और सामञ्जस्य का सर्जन करती है—वह तो व्यक्तियों के बीच का प्राणिक प्रेम है जिसका त्याग करना ज़रूरी है क्योंकि यह भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण को हर लेता है। लेकिन पहली चीज़ श्रीमाँ की चेतना में अन्तरात्मा की वृद्धि में सहायता करती है और उनके कार्य में तथा व्यक्ति के आन्तरिक जीवन को विकसित करने में भी सहायक होती है।

स्वयं को श्रीमाँ को दे देना

हर एक को माँ वही देती हैं जो उसके लिए आवश्यक होता है; व्यक्ति को जिस चीज़ की ज़रूरत होती है और वह जिसे ग्रहण करने में समर्थ होता है उसे प्रदान करने में वे कभी अपना हाथ नहीं खींचतीं। हम ही हैं जो उनकी दी हुई चीज़ को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत नहीं होते।

हाँ, माँ हमेशा देने के लिए बहुत ही इच्छुक होती हैं और उन्हें इससे अधिक हर्ष और किसी चीज़ से नहीं होता जब वे अपने बच्चों को उनकी दी हुई वस्तु को ग्रहण करते देखती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६३

सारे दिन मेरा प्राण रोता रहा। उसे लगता है कि माँ उससे सद्‌भावना नहीं रखतीं और वह बिसूरता रहता है कि वह उनके स्नेह से वञ्चित है। उनकी चुप्पी से वह लड़खड़ा जाता है, उनके ध्यान न देने से वह सिकुड़ जाता है।

इस सबके पीछे सुधरने से मना करने वाला वही प्राण है जो अहंकार, कामना और माँग से भरा हुआ है और इसलिए वह हमेशा असन्तुष्ट रहता है, शिकायत करता, ग़लत विचारों को पोसता और अपने-आप बनाये हुए दुःख में डूबा रहता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६४

चैत्य प्रेम

यदि चैत्य अग्रभाग में स्थित और क्रियाशील हो तो वह प्रकृति के किसी भी भाग को, जो अस्त-व्यस्त होना चाहता है, तुरन्त यह कहेगा, "श्रीमाँ जो भी क्रिया या निर्णय करें उसे समर्पण और प्रसन्नता के भाव से स्वीकार करना होगा। मन को यह नहीं मानना होगा कि वह माँ से अधिक अच्छी तरह जानता है कि क्या किया जाना चाहिये, प्राण को यह नहीं चाहना होगा कि माँ उसकी माँगों और पसन्दगियों के अनुसार कार्य करें। क्योंकि ऐसे विचार और कामनाएँ पुरानी प्रकृति की चीज़ें हैं और चैत्य तथा आध्यात्मिक प्रकृति में उनका कोई स्थान नहीं। वे अहंभाव की भूलें हैं।" और यदि चैत्य को प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त होता तो विक्षोभ तुरन्त समाप्त हो जाता या क्षीण पड़ कर मिट जाता। वास्तव में, यदि उसे पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त होता तो ऐसे विक्षोभ सम्भव ही न होते। अतः, यह मानना होगा कि सम्भवतः चैत्य पुरुष तुम्हारी सत्ता पर कुछ प्रभाव डालता चला आ रहा है पर उसका नियन्त्रण पूर्ण होने से कहीं दूर है या फिर प्राण उठ खड़ा हुआ है और उसने चैत्य को ढक कर उसका प्रभाव रोक दिया है। परन्तु यदि चैत्य पूरी तरह से सामने आया हुआ हो, ढका हुआ न हो या केवल अभी-अभी उभर ही न रहा हो, तो उसे पूरी तरह से ढक देना सम्भव ही नहीं होगा—तब तो केवल अधिक-से-अधिक ऊपरी सतह पर ही खलबली हो सकती है जब कि

अन्दर सब कुछ शान्त, सचेतन और समर्पित ही रहेगा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४७०

उत्तम नींव

माँ, मेरी सैकड़ों अपूर्णताओं के बावजूद, यह अच्छी चीज़ मेरे अन्दर टिकी हुई है कि आप मेरी माँ हो, कि मेरा जन्म आपके हृदय से हुआ है। यही एकमात्र सत्य है जिसे मैं इन छह सालों में उपलब्ध कर पाया हूँ, और मैं आपको कोटिशः धन्यवाद अर्पण करता हूँ कि कम-से-कम इतना अनुभव करने में तो मैं समर्थ हुआ।

उन दूसरे सत्यों के लिए—जो अभी आने वाले हैं—यह उत्तम नींव है, क्योंकि सभी सत्य इसी नींव पर टिके रहते हैं।

जब कभी मैं ध्यान में बैठता हूँ, "माँ-माँ-माँ" का निरन्तर जाप करता रहता हूँ। तब सब कुछ शान्त हो जाता है और मैं अन्दर और बाहर महान् शान्ति का अनुभव करता हूँ। यहाँ तक कि अपने चारों ओर के वातावरण में भी मैं "माँ-माँ-माँ" ही सुनता हूँ। क्या यह सच है या मात्र गूँजें?

अपने चारों तरफ़ तुम जो वातावरण लिये रहते हो वह तुम्हारी चेतना का ही एक भाग होता है और साथ ही उसमें वह शान्ति भी हमेशा बनी रहती है जिसे तुम अपने अन्दर अनुभव करते हो। जब तुम माँ का नाम बार-बार दोहराते हो तो वह तुम्हारी सारी चेतना में—आन्तरिक और साथ-साथ बाह्य में भी—प्रतिध्वनित होने लगती है। अतः, जो तुमने अनुभव किया वह सच्चा है और बहुत बढ़िया अनुभव है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४७८-७९

इस पर विचार मत करो कि लोग तुमसे सहमत हैं या असहमत अथवा तुम अच्छे हो या बुरे, बल्कि यह विचार करो कि "माँ मुझसे प्रेम करती हैं और मैं माँ का हूँ।" यदि तुम इस विचार को अपने जीवन का आधार बना लो तो सब कुछ शीघ्र ही आसान हो जायेगा। **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ का प्रेम

प्रेम मिश्रित होता है

हम सभी माँ का प्रेम चाहते हैं, पर मुझे सन्देह है कि हममें से कितने लोग सचमुच माँ से प्रेम करते हैं। हममें से अधिकतर लोग अपनी निजी पसन्दगी और नापसन्दगी, सुख और दुःख, सन्तोष और निराशा में ही निवास करते हैं पर मुश्किल से ही कोई व्यक्ति वास्तव में माँ को प्यार करता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि उनमें प्रेम नहीं है, पर वह प्रेम स्वार्थपरता, माँग और प्राणिक क्रियाओं से मिला-जुला और ढका हुआ है। कम-से-कम अधिकतर लोगों की यही अवस्था है। निःसन्देह, कुछ लोग ऐसे हैं जिनमें एकदम प्रेम नहीं है अथवा जो कुछ वे पाते हैं केवल उसी के लिए 'प्रेम' —अगर उसे यह नाम दिया जाये—करते हैं; एक या दो ऐसे हैं जो सचमुच में प्रेम करते हैं, पर बहुत से लोगों में चैत्य स्फुलिंग घने धुएँ में छिपा हुआ है। उस धुएँ से छुटकारा पाना ही होगा जिससे कि स्फुलिंग को अग्निशिखा के रूप में बढ़ने का अवसर प्राप्त हो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४७९-८०

दो भूलें

'क्ष' सम्भवतः दो भूलें कर रहा है—पहली, माँ से प्रेम की बाह्य अभिव्यक्ति की प्रत्याशा; दूसरी, माँ के प्रति उद्घाटन तथा समर्पण पर एकाग्र हुए बिना बस अपनी व्यक्तिगत प्रगति की चाह, उस समर्पण में न कोई माँग होनी चाहिये न बदले में किसी चीज़ को पाने की भावना। ये दो भूलें हैं जो साधक लगातार किया करते हैं। अगर कोई उद्घाटित हो जाये, अगर कोई समर्पण कर दे, तब जैसे ही प्रकृति तैयार हो जाती है, प्रगति अपने-आप ही होती रहेगी; लेकिन प्रगति करने की वैयक्तिक स्वार्थभरी इच्छा ही कठिनाइयाँ, प्रतिरोध और हताशा लाती हैं क्योंकि तब मन चीज़ों को उचित दृष्टिकोण से नहीं देखता। 'क्ष' के प्रति श्रीमाँ के अन्दर विशेष करुणा है और रोज़ प्रणाम के समय वे उसे पुष्टिदायक बल देने की कोशिश करती हैं। उसे मन और प्राण में बहुत शान्त रहना सीखना होगा और स्वयं

को समर्पित करना होगा ताकि वह सचेतन बन जाये और साथ-ही-साथ ग्रहणशील भी। मानव प्रेम से भिन्न, भागवत प्रेम गभीर, विशाल और शान्त होता है; उसके बारे में सचेतन होने और उसे प्रत्युत्तर देने के लिए व्यक्ति को शान्त और विशाल होना चाहिये। दिव्य प्रेम के प्रति स्वयं को निछावर कर देना ही उसका उद्देश्य होना चाहिये ताकि उसे ग्रहण करने के लिए वह एक उपयुक्त पात्र तथा माध्यम बन सके—साथ ही छोड़ देना चाहिये सब कुछ 'भागवत प्रज्ञा' और 'प्रेम' पर कि वे उसे सभी आवश्यक वस्तुओं से भर दें। उसे यह बात भी अपने मन में बसा लेनी चाहिये कि वह इस पर कतई ज़ोर न दे कि उसे एक नियत समय में प्रगति और विकास कर लेना चाहिये, उपलब्धियाँ और अनुभूतियाँ प्राप्त कर लेनी चाहियें—चाहे जितना समय लगे, उसे प्रतीक्षा करने और डटे रहने के लिए तैयार रहना चाहिये और अपने सारे जीवन को साक्षात् एक अभीप्सा बना देना और केवल एक ही वस्तु—भगवान्—के प्रति उद्घाटित हो जाना चाहिये। किसी चीज़ को माँग कर हस्तगत कर लेना नहीं बल्कि अपने-आपको दे देना ही साधना का रहस्य है। व्यक्ति जितना अधिक अपने-आपको देता है, उतनी अधिक ग्रहण करने की शक्ति भी बढ़ती जाती है। लेकिन इसके लिए समस्त अधैर्य और विद्रोह को रफ़ा-दफ़ा होना होगा,—मुझे यह नहीं मिल रहा, मेरी कोई सहायता नहीं कर रहा, मुझसे कोई प्रेम नहीं करता, यहाँ से चले जाने का सुझाव, या जीवन छोड़ देने अथवा आध्यात्मिक प्रयास त्याग देने का विचार—इन सभी चीज़ों को अपने अन्दर से निकाल एकदम बाहर फेंक देना चाहिये।

*

माँ तुम्हें रुलाती नहीं हैं। वे तो प्राणिक प्रकृति की शक्तियाँ हैं जो तुम्हें उदास बना देतीं, मरने का सुझाव देतीं और अतीत से चिपकी रहती हैं। श्रीमाँ से जो आता है वह है, प्रेम और प्रकाश और शान्ति तथा हर्ष और भविष्य का आध्यात्मिक जीवन।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४८१-८२

माँ के साथ आन्तरिक एकत्व तथा बाह्य सम्बन्ध

आध्यात्मिक एकत्व अन्दर से आरम्भ होना चाहिये और फिर वहाँ से बाहर की ओर फैलना चाहिये; वह किसी भी बाहरी चीज़ पर नहीं टिक सकता—क्योंकि, अगर इस तरह टिका हो तो वह एकत्व आध्यात्मिक या सच्चा नहीं हो सकता। यही सबसे बड़ी भूल है जो यहाँ बहुत से लोग करते हैं; वे माँ के साथ बाहरी प्राणिक या भौतिक सम्बन्ध पर ही सारा ज़ोर देते हैं; प्राणिक आदान-प्रदान या भौतिक सम्पर्क के लिए आग्रह करते हैं और जब वे उसे सन्तोषप्रद मात्रा में नहीं पाते तब वे सब प्रकार की अव्यवस्था, विद्रोह, शंका-सन्देह और अवसाद में जा गिरते हैं। यह एकदम ग़लत दृष्टि है और इसने बहुत अधिक बाधा और उपद्रव ही खड़ा किया है। मन, प्राण और शरीर एकत्व में भाग ले सकते हैं और भाग लेना ही उनके लिए अभिप्रेत है, पर उसके लिए उन्हें चैत्य पुरुष की अधीनता स्वीकार करनी होगी, स्वयं चैत्य-भावापन्न हो जाना होगा; एकत्व को मूलतः चैत्य और आध्यात्मिक एकत्व होना होगा और मन, प्राण और शरीर तक में फैल जाना होगा। शरीर तक को इस योग्य हो जाना होगा कि वह सूक्ष्म रूप से माँ का सान्निध्य, उनकी ठोस उपस्थिति अनुभव कर सके—केवल तभी एकत्व वास्तव में स्थापित हो सकता और पूर्ण बन सकता है और केवल तभी कोई भौतिक सामीप्य या संस्पर्श अपना सच्चा मूल्य प्राप्त कर सकता और अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को सिद्ध कर सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक कोई भी भौतिक संस्पर्श बस उतना ही मूल्य रखता है जितना कि वह आन्तरिक साधना में सहायता पहुँचाता है; परन्तु कितना-सा दिया जा सकता है और कौन सी चीज़ सहायक या बाधक होगी—इसका विचार एकमात्र माँ ही कर सकती हैं, साधक इस विषय में निर्णायक नहीं बन सकता—वह तो अपनी कामनाओं और निम्नतर प्राणमय अहंकार के द्वारा पथ-भ्रष्ट हो जायेगा, जैसा कि वास्तव में बहुत से लोग हो चुके हैं। जब प्राणिक माँग मौजूद होती है, प्राण दावा करता है, विद्रोह करता है और बाहरी सम्पर्क या सामीप्य की कामना को इन सब चीज़ों का कारण या एक अवसर बना देता है तो ये सब चीज़ें आन्तरिक एकत्व के विकसित होने में बड़ी रुकावट डालती हैं, उसमें बिलकुल ही सहायक नहीं होतीं।

अपने अज्ञानवश साधक हमेशा ही यह कल्पना करते हैं कि जब श्रीमाँ एक व्यक्ति के साथ दूसरे की अपेक्षा अधिक मुलाक़ात करती हैं, तब इसका कारण यह है कि वे उसे अधिक पसन्द करती हैं और उस व्यक्ति को अधिक प्रेम तथा सहायता दे रही हैं। यह एकदम ग़लत है।

शारीरिक सामीप्य और संस्पर्श वास्तव में साधक के लिए एक कठोर अग्निपरीक्षा हो सकती है; वह प्राणिक माँग, दावे, ईर्ष्या आदि को बहुत ऊँचे शिखर तक ऊपर उठा सकता है; फिर दूसरी ओर, हो सकता है कि उसके कारण साधक बाहरी सम्बन्ध से ही सन्तुष्ट हो जाये और आन्तरिक एकत्व के लिए कोई सच्चा प्रयास ही न करे; अथवा वह, साधारण और परिचित होने के कारण, एक यान्त्रिक चीज़ बन जाये और किसी भी आन्तरिक उद्देश्य के लिए एकदम बेकार हो जाये—ये सब चीज़ें केवल सम्भव ही नहीं हैं बल्कि बहुत से लोगों में घटित भी हुई हैं। श्रीमाँ यह जानती हैं और इसलिए इस विषय में उनकी व्यवस्था का कारण लोग जो कुछ समझते हैं उससे एकदम भिन्न होता है।

एकमात्र सुरक्षित बात है, सबसे पहले और पूर्ण रूप से आन्तरिक एकत्व पर ध्यान जमाना, उसी को प्राप्त करने-योग्य एकमात्र चीज़ बना लेना और किसी भी बाहरी चीज़ के लिए सभी तरह की माँगों और दावों को छोड़ देना, जो कुछ माँ दें बस उसी से सन्तुष्ट रहना और पूरी तरह से उन्हीं के ज्ञान और देख-रेख पर निर्भर करना। यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जानी चाहिये कि जो कामना विद्रोह, शंका-सन्देह, अवसाद, भीषण संघर्ष आदि उत्पन्न करती है वह कभी आध्यात्मिक क्रिया का सच्चा अंग नहीं हो सकती। अगर तुम्हारा मन कहे कि यह उचित है, तब निश्चय ही तुम्हें मन के सुझावों पर अविश्वास करना चाहिये। बस उसी एक आवश्यक चीज़ पर पूर्ण रूप से ध्यान एकाग्र करो, और, उन सभी सम्भावनाओं और शक्तियों को, अगर वे आयें तो, अलग रख दो जो उस चीज़ में गड़बड़ उत्पन्न करना चाहें अथवा तुम्हें विपथगामी बनायें। इन सब चीज़ों के लिए जो प्राण की स्वीकृति होती है उसे जीतना होगा, पर उसके लिए सबसे पहली बात है, सब प्रकार की मानसिक स्वीकृति देना अस्वीकार कर देना; क्योंकि मानसिक अनुमोदन उन्हें इतनी अधिक शक्ति प्रदान करता है जितनी उन्हें अन्य किसी प्रकार नहीं प्राप्त होती। मन और गभीरतर भावमय सत्ता

में समुचित श्रद्धा रखो—जब विपरीत शक्तियाँ उठ खड़ी हों तब उसी से चिपके रहो और उसी दृढ़ चैत्य भाव के द्वारा उन्हें दूर भगा दो।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४८३-८५

आरम्भ में, बस इन तीन नियमों का पालन करो :

१. हमेशा श्रीमाँ के संरक्षण और प्रेम पर भरोसा रखो—उन्हीं पर विश्वास करो और प्रत्येक सुझाव पर, प्रत्येक बाहरी रूप पर, जो उनका विरोध करता हुआ मालूम हो, अविश्वास करो।

२. ऐसे प्रत्येक भाव, प्रत्येक आवेग का तुरन्त त्याग कर दो जो तुम्हें श्रीमाँ से—उनके साथ के तुम्हारे सच्चे सम्बन्ध से, आन्तरिक सामीप्य से, उनके प्रति तुम्हारे सरल और सीधे-सादे विश्वास से—अलग हटाता है।

३. बाहरी लक्षणों पर बहुत अधिक बल मत दो—उनको देखने-विचारने से तुम सहज ही ग़लत रास्ते पर चले जा सकते हो। श्रीमाँ की ओर अपने को खोले रखो और अपने हृदय से—आन्तर हृदय से, ऊपरी प्राणिक वासना के द्वारा नहीं, बल्कि सच्चे भावावेग वाले हृदय के द्वारा—उन्हें अनुभव करो; वहीं उन्हें प्राप्त करना, अपने अन्दर सर्वदा उनके सान्निध्य में रहना और जो कुछ तुम्हें देने के लिए वे निरन्तर कार्य कर रही हैं उसे ग्रहण करना तुम्हारे लिए अधिक सम्भव होगा।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४८९

आन्तरिक सामीप्य

मैं श्रीमाँ के समीप रहना चाहता हूँ। अगर मैं उनके क़रीब रहूँ तो विरोधी शक्तियाँ मुझ पर आक्रमण नहीं कर पायेंगी।

तुम्हारी बात ग़लत है। जो भौतिक रूप से माँ के निकट हैं उनमें से कई ऐसे हैं जिन्होंने, तुमने जितने प्रहार सहे हैं उनसे कहीं ज़्यादा बदतर प्रहार सहे हैं। आन्तरिक निकटता रक्षा करती है, भौतिक सामीप्य नहीं।

आन्तरिक समीपता का महत्त्व होता है। मन का यह विचार—निस्सन्देह, यह बहुत स्वाभाविक भी है—कि बाहरी निकटता किसी विशेष सम्बन्ध, कृपादृष्टि या तेज़ प्रगति का चिह्न है, लेकिन अनुभव यह नहीं बतलाता। कुछ हैं जो माँ के रोज़ाना दर्शन करते हैं, उनसे मिलते हैं, लेकिन बरसों

पहले जैसे थे उससे तिल-भर ही प्रगति कर पाये—ऐसे भी थे जो पहले से बदतर बन गये क्योंकि इस चीज़ ने उनकी प्राणिक माँगों को पुष्ट किया —दूसरी तरफ़, कई ऐसे हैं जो श्रीमाँ के बहुत क़रीब हैं, पथ पर बहुत आगे बढ़ गये हैं, माँ की आँखों का तारा हैं, लेकिन वे मिलते हैं माँ से कभी-कदास ही। और मैं एक ऐसा उदाहरण दे सकता हूँ जहाँ वह व्यक्ति साल में केवल एक बार श्रीमाँ के पास आता था, फिर भी, जितनी तेज़ी से उसने प्रगति की, और किसी ने नहीं की, और उसके अन्दर श्रीमाँ के प्रति तीव्र और उत्साह से भरा इतना प्रेम था जितना और किसी में नहीं था। इन सभी चीज़ों में सबसे अच्छा यही है कि तुम माँ पर और उनके मार्गदर्शक प्रकाश पर पूरा-पक्का भरोसा रखो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४९४

अगर तुम्हारा निकट का आन्तरिक सम्बन्ध है तो तुम हमेशा श्रीमाँ को अपने समीप, अपने अन्दर और अपने चारों ओर पाओगे; हम इस पर आग्रह नहीं करते कि भौतिक सामीप्य ज़रूरी है। जो भौतिक रूप से श्रीमाँ के पास नहीं हो सकते, वे उसके लिए अभीप्सा तो करें, लेकिन उसे पाने के लिए ज़मीन-आसमान एक करने की कोशिश न करें। अगर उन्हें बाहरी निकटता भी मिल जाये, वे देखेंगे कि आन्तरिक एकात्मता तथा समीपता के बिना बाहरी सामीप्य का एकदम से कोई मूल्य नहीं है। तुम भौतिक रूप से माँ के क़रीब रहते हुए भी सहारा रेगिस्तान के जितने दूर हो सकते हो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४९५

श्रीमाँ की उपस्थिति का हमेशा अनुभव करना

तुम अपने अन्दर अधिकाधिक गभीर रूप से चैत्य चेतना में उतरते जा रहे हो। जब व्यक्ति चैत्य चेतना में होता है तो वह अपने अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति का अनुभव करने लगता है और कुछ समय बाद, जैसे-जैसे चैत्य अपनी शक्ति में विकसित होता जाता है, यह चीज़ अधिकाधिक अनुभव की जा सकती है, यह ओजस्वी और सत्य बन जाती है। अलग-अलग साधकों के अन्दर यह अलग-अलग तरीक़ों से अनुभव की जा सकती है, लेकिन यही होती है साधना की सच्ची अनुभूति।

जब हम कहते हैं कि साधक को हमेशा अपने हृदय में या अपने अन्दर

श्रीमाँ की उपस्थिति को अनुभव करना चाहिये तो उससे हमारा यही मतलब होता है। क्योंकि, वास्तव में वे हमेशा वहीं उपस्थित रहती हैं, केवल उनकी उपस्थिति मन, प्राण तथा भौतिक के सामान्य क्रिया-कलापों के परदे के पीछे छिपी रहती है, लेकिन जब ये शान्त हो जाते हैं और चैत्य परदे से बाहर निकल आता है तब व्यक्ति अपने अन्दर 'भगवान्' की उपस्थिति का अनुभव करने लगता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८७

चैत्य भक्ति

श्रीमाँ के प्रति इतने प्रबल रूप से जिस प्रेम का तुम अनुभव कर रहे हो और साथ ही जिनके साथ तुम रहते हो या कार्य करते हो उनके साथ सामञ्जस्य तथा स्नेह की जिस प्रवृत्ति के बारे में तुम कह रहे हो ये दोनों ही चैत्य सत्ता से आते हैं। जब चैत्य अपने प्रभाव को तीव्र बना देता है तब श्रीमाँ के प्रति यह प्रेम मज़बूत बन जाता है और वही व्यक्ति के स्वभाव को गढ़ने में प्रमुख सहायक बन जाता है। और साथ ही दूसरों के लिए तुम्हारे अन्दर सद्भावना, करुणा तथा स्नेह का जो भाव जाग रहा है वह इतना वैयक्तिक नहीं है बल्कि वह तो श्रीमाँ के सभी बच्चों की अन्तरात्माओं के साथ तुम्हारी अन्तरात्मा के घनिष्ठतम सम्बन्ध का परिणाम है। इस चैत्य भावना के होने में कोई हानि नहीं है; इसके विपरीत, यह तो प्रसन्नता और सामञ्जस्य फैलाती है—वह तो दो व्यक्तियों के बीच का प्राणिक प्रेम है जिसका त्याग करना चाहिये, क्योंकि वह तुम्हें 'भगवान्' के प्रति पूर्ण उत्सर्ग से पीछे खींच लेता है। हाँ, पहले प्रकार का प्रेम श्रीमाँ की चेतना में विकसित होने में तुम्हारी मदद करता है और साथ ही तुम्हारे आन्तरिक जीवन की प्रगति में भी तुम्हारा सहायक होता है।

अपने अन्दर श्रीमाँ के लिए शुद्ध भक्ति मैं कैसे पा सकता हूँ?

पवित्र पूजा, आराधना, बिना किसी दावे या माँग के भगवान् के प्रति प्रेम —इसे ही कहते हैं, शुद्ध भक्ति।

यह किस भाग से अभिव्यक्त होती है?

चैत्य से।

क्या चैत्य भक्ति पूर्ण भक्ति है?

यह पूर्ण भक्ति का आधार है।

मैं चैत्य भक्ति को कैसे विकसित कर सकता हूँ?

निष्कपट अभीप्सा द्वारा।

श्रीमाँ के लिए चैत्य भक्ति, मानसिक भक्ति तथा प्राणिक भक्ति के चिह्न क्या हैं? उन्हें कैसे पहचाना जाये?

चैत्य भक्ति में होता है प्रेम तथा आत्म-दान, उसमें कोई माँग नहीं होती, प्राण में होती है यह इच्छा कि श्रीमाँ उसे अपने अधिकार में ले लें और वह उन्हीं की सेवा करे, मानसिक भक्ति में होती है श्रद्धा और श्रीमाँ जो कहें या जो करें उसके लिए ऐसी स्वीकृति जो कभी प्रश्न नहीं करती। बहरहाल, ये सभी बाहरी चिह्न हैं—जो आन्तरिक चिह्न होता है उसे आसानी से पहचाना जा सकता है, लेकिन उसे शब्दों में रखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अन्त में भक्ति एक और समान ही है।

क्या इस योग में मानसिक तथा प्राणिक भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है?

किसने कहा नहीं है? जब तक वह सच्ची हो तब तक प्रत्येक भक्ति का अपना स्थान है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६३, ४७६-७७

दूसरों के विषय में तथा अपनी "बुराई" के विषय में विचार करते रहने के कारण ही तुम अपने को माँ से दूर अनुभव करते हो। हमेशा वे तुम्हारे अत्यन्त समीप हैं और तुम उनके। यदि तुम इस दृष्टिकोण को अपनाओ जो मैंने कहा था कि "माँ मुझसे प्रेम करती हैं और मैं उनका हूँ," और इसी को अपने जीवन का आधार बना लो तो परदा शीघ्र ही हट जायेगा, क्योंकि वह इन्हीं विचारों से बना है और किसी चीज़ से नहीं।

श्रीअरविन्द

चैत्य क्षण

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ को देखने-भर से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

यह चैत्य भावना है।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के स्मरण-मात्र से सन्तोष और आनन्द का अनुभव करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के विरोध में कुछ सुनने से हृदय में घाव पैदा करती है?

चैत्य।

यह किस प्रकार की भावना है जो श्रीमाँ के भौतिक रूप से निकट न होने पर भी हमारे हृदय में श्रीमाँ की उपस्थिति का अनुभव कराती है?

चैत्य।

मैं यह कैसे समझ सकूँगा कि मैं चैत्य प्रेम से भरपूर हूँ?

अहंकार के लोप द्वारा, भक्ति द्वारा, भगवान् के प्रति आज्ञाकारिता और समर्पण द्वारा।

दो दिनों तक श्रीमाँ तथा आपके लिए मेरे अन्दर तीव्र प्रेम था; मेरी सारी सत्ता इससे अभिभूत थी। फिर उसका आंशिक प्रभाव ही रहा —श्रीअरविन्द तथा आपके प्रति एक उच्च तथा गभीर आदर-भाव उदित हुआ और मैंने ऐसी प्रसन्नता का अनुभव किया जिसे कोई भी भौतिक सुख प्रदान नहीं कर सकता।

यह निस्सन्देह चैत्य भाव था।

मैंने बहुधा देखा है कि जब भगवान् के लिए एक आन्तरिक प्रेम उमड़ता है तो आँसुओं की धारा बह निकलती है।

ये भक्ति तथा इसी तरह के अन्य भावों के चैत्य आँसू होते हैं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ४६७-६८

चैत्य आनन्द

यदि तुम सुख की बात कहते हो तो प्राण का सुख ऐसी चीज़ है जो बहुत तेज़ी से ग़ायब हो जाता है, और मैं समझती हूँ कि जीवन में—जीवन में जैसा कि वह अभी है—सुख की अपेक्षा दुःख के कहीं अधिक अवसर आते हैं। सुख अपने-आपमें एक अत्यन्त तेज़ी से विलुप्त होने वाली चीज़ है, क्योंकि यदि सुख का वही स्पन्दन कुछ अधिक समय तक बना रहे तो वह दुःखदायी या यहाँ तक कि विरक्तिजनक बन जाता है—ठीक वही स्पन्दन।

सुख अपने-आपमें बहुत अस्थायी होता है। परन्तु यदि तुम आनन्द की बात कर रहे हो तो वह एकदम से भिन्न वस्तु है, वह हृदय में प्राप्त होने वाली एक प्रकार की उष्णता और ज्योति है, है न?—हम अपने मन में भी आनन्द अनुभव कर सकते हैं, पर वह कहीं अन्यत्र प्राप्त होने वाली एक प्रकार की उष्णता और सुखकर ज्योति होता है। वह एक ऐसा गुण है जो अभी तक पूर्णतया विकसित नहीं हुआ है और मनुष्य कभी-कदास ही उसे प्राप्त करने-योग्य आवश्यक मनोवैज्ञानिक स्थिति में होता है। और यही कारण है कि वह क्षणस्थायी होता है। अन्यथा, सत्ता के सत्य के अन्दर, सत्ता के सत्य-स्वरूप के अन्दर, तुम्हारी सच्ची आत्मा के, तुम्हारी अन्तरात्मा के, तुम्हारे चैत्य पुरुष के अन्दर आनन्द निरन्तर बना रहता है, निरन्तर।

इसका सुख के साथ कोई सरोकार नहीं, यह एक प्रकार का आन्तरिक आह्लाद है।

परन्तु मनुष्य बहुत कम ही इसे अनुभव करने की स्थिति में होता है, जब तक कि कोई अपने चैत्य पुरुष के विषय में पूरी तरह सचेतन नहीं हो जाता।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २३०-३१

शरीर धारण करने का उद्देश्य

आपने एक बार लिखा था : "वे माँ के बालक हैं और उनके सबसे निकट हैं जो उनकी ओर उद्घाटित हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके समीप हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं—वे नहीं जो भौतिक रूप से उनके सबसे निकट हैं।" मैं इसमें निहित सत्य का खण्डन नहीं करता। लेकिन तब माँ ने शरीर-धारण क्यों किया और हम यहाँ पाण्डिचेरी में क्यों हैं? हमारा आन्तरिक सम्पर्क कहीं भी हो सकता है, यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।

माताजी ने भौतिक प्रकृति के कार्य के लिए शरीर धारण किया है (उसमें भौतिक जगत् के बदलने का भी कार्य है)। वे धरती पर लोगों के साथ "भौतिक सम्बन्ध" बनाने नहीं आयी हैं, वे जगज्जननी हैं। कुछ यहाँ उनके कार्य में हिस्सा लेने आये हैं, कुछ को उन्होंने बुलाया है, अन्य प्रकाश की खोज में आये हैं। हर एक के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध है या वैयक्तिक सम्बन्ध बनाने की आशा है; लेकिन प्रत्येक का उनके साथ सम्बन्ध अनूठा है और कोई यह नहीं कह सकता कि उन्हें प्रत्येक के साथ एक-जैसा ही बर्ताव करना चाहिये। कोई यह दावा नहीं कर सकता कि भौतिक रूप से उन्हें उसके निकट होना चाहिये क्योंकि वे दूसरे भौतिक रूप से उनके बहुत निकट रहते हैं। कइयों के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध है, फिर भी वे उनसे बहुत कम मिलती हैं—कइयों के साथ उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है, फिर भी किसी-न-किसी कारणवश वे उनसे अधिक समय के लिए मिलती हैं। यहाँ इस भौतिक मन के हास्यास्पद गणित के नियमों को लागू करना मूर्खता है—तुम्हारा भौतिक मन माताजी के कार्य को समझ नहीं सकता, और अगर तुम अपनी व्यक्तिगत प्राणिक माँगों और कामनाओं को उनके आगे रखो कि उन्हें इन्हें पूरा करना ही चाहिये, तो यह बहुत ही बुरा है। तब तो तुम आध्यात्मिक विनाश के कगार पर जा पहुँचोगे। श्रीमाँ हर एक के साथ उसके लिए जो उचित हो, उसके हिसाब से क्रिया करती हैं।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ५०९

अपने हृदय को खोलो
और तुम मुझे वहाँ पहले से ही मौजूद पाओगे।
'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ६८

"मैं तुम्हारे साथ हूँ"

माताजी हमेशा हर एक को उतना प्रेम देती हैं जितने की उसे ज़रूरत है।

*

मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में विराजमान हूँ, सचेतन रूप से तुम्हारे अन्दर रहती हूँ।

*

बेचैन न होओ, शान्ति के साथ अपने हृदय में एकाग्र रहो और तुम मुझे वहाँ पाओगे।

*

मन्दिर के अन्दर गहराई में जाओ, तुम मुझे वहाँ पाओगे।

*

अभीप्सा करने वाली सभी आत्माएँ हमेशा मेरी सीधी देख-रेख में हैं।

*

माताजी उन सबके साथ हैं जो दिव्य जीवन के लिए अभीप्सा में सच्चे हैं।

*

मैं हमेशा तुम्हारे पास, तुम्हारे अन्दर उपस्थित हूँ, और मेरे आशीर्वाद मुझे लिये आते हैं।

*

यह विश्वास रखो कि मैं हमेशा तुम्हें रास्ता दिखाने के लिए, तुम्हारे काम में और तुम्हारी साधना में सहायता करने के लिए तुम लोगों के बीच उपस्थित रहती हूँ।

*

अभी के लिए आवश्यक है चेतना के विस्तार और गहराई को बढ़ाना जिसके कारण तुम अपने साथ मेरी निरन्तर उपस्थिति का वास्तविक और

ठोस रूप में अनुभव कर सकते हो जिससे तुम्हें निर्विकार शान्ति मिलेगी।

*

मेरी निरन्तर, प्रेममयी उपस्थिति का भान सदा बनाये रखो और सब कुछ ठीक होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ६८-७०

श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ का प्रेम

मैं तुम्हारी अपेक्षा ज़्यादा अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम क्या हो और क्या नहीं हो; और जिसे तुम अपना निम्न प्राण कहते हो उसके पीछे छिपे हुए ख़ज़ानों को जानती हूँ।

तुम जो कुछ कहते हो उसमें बस एक ही बात सच्ची है, कि प्रेम निःस्वार्थ और बिना शर्त होता है। तुम्हारे लिए मेरा और श्रीअरविन्द का प्रेम ऐसा ही है।

इसलिए हम तुम्हारी सारी बकवास पर कभी ध्यान नहीं देंगे और निश्चय ही तुमसे प्रेम करेंगे।

बिना डरे मेरे पास आओ। मैं तुम्हें नहीं डाँटूँगी और न "गोल-गोल आँखों" से देखूँगी।

*

श्रीअरविन्द ने तुम्हें जो लिखा है उसे याद रखो। जब ऐसे 'मूड' आते हैं, तो तुम माँ के पास से क्यों भाग जाते हो? इसके विपरीत, उनके पास जाओ और वे आसानी से तुम्हारा इलाज कर देंगी। उन्होंने जो कहा था उसका यही सार है।

*

मेरे बालक मुझे कभी न लिखें फिर भी मैं उन्हें हमेशा समान रूप से याद करती और उनसे प्रेम करती हूँ—और सभी सच्ची प्रार्थनाओं को हमेशा प्रत्युत्तर मिलता है चाहे मैं स्वयं न भी लिखूँ। इसलिए दुःख न करो। और ख़ुश रहो।

*

मेरा ख़याल है कि हमेशा, हर क्षण कोई-न-कोई आपको बुलाता रहता है और आप उत्तर देती हैं। क्या इससे आपकी नींद या आपके विश्राम में बाधा नहीं पड़ती?

दिन-रात सैकड़ों पुकारें आती रहती हैं—लेकिन चेतना हमेशा जाग्रत् रहती और उत्तर देती है।

हम केवल भौतिक रूप में देश और काल से सीमित होते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ७१-७२, ७४

कोई वास्तविक अलगाव नहीं

मैं तुमसे मिलती हूँ या नहीं, इससे सहायता में कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वह हमेशा रहेगी।

*

तुम्हें अपने मन से इन दो मिथ्यात्वों को दूर कर देना चाहिये।

१) तुम्हें मुझसे जो मिलता है उसका दूसरों के पास जो है या नहीं है उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध केवल तुम्हारे ऊपर निर्भर है; मैं तुम्हें तुम्हारी सच्ची आवश्यकता और योग्यता के अनुसार देती हूँ। यहाँ भी, तुम मेरे साथ अकेले ही थे; अगर दूसरे न भी होते तो भी तुम्हें इससे ज़्यादा न मिलता।

२) यह सोचना बहुत बड़ी भूल है कि प्रगति के लिए शारीरिक सामीप्य एकमात्र अनिवार्य चीज़ है। अगर तुम आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित न कर सको तो यह तुम्हारे लिए कुछ भी न करेगा, क्योंकि उसके बिना तुम चाहे दिन-रात मेरे साथ बने रहो, फिर भी तुम सचमुच कभी मेरे पास नहीं होओगे। केवल आन्तरिक उद्घाटन और सम्पर्क के द्वारा ही तुम मेरी उपस्थिति का अनुभव कर सकते हो।

*

यह कहना ज़्यादा ही होगा कि अमुक विचार, अमुक भावनाएँ और अमुक कार्य लोगों को मुझसे दूर ले जाते हैं या समस्त भौतिक सामीप्य के होते हुए भी मेरे और व्यक्ति के बीच अलगाव पैदा कर देते हैं।

*

हमें लगता है कि हम आपकी उपस्थिति से दूर हो गये हैं; मेरी माँ, यह अलगाव केवल एक भ्रान्ति है न?

कोई वास्तविक अलगाव है ही नहीं, लेकिन अगर चेतना कोई ग़लत वृत्ति अपनाये, तो वह अपने-आपको ऐसी स्थिति में रख देती है जिसमें अलगाव का संवेदन या भाव होता है।

*

क्या आपके साथ भौतिक सम्पर्क अनिवार्य है?

नहीं, यह भौतिक सम्पर्क अनिवार्य नहीं है। यह निश्चित है कि जिनका मनोभाव ठीक होता है, उनके शरीर को भौतिक सम्पर्क रूपान्तर की गति का अनुसरण करने में सहायता देता है, लेकिन शरीर कदाचित् ही ऐसी अवस्था में होता है कि उससे लाभ उठा सके। साधारणतः जन्मदिनों पर वह ज्यादा ग्रहणशील होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ८०, ८२

सच्चा सम्बन्ध

अब मैं सक्रिय जीवन में नहीं हूँ; अगर तुम उद्घाटित हो तो सहायता अवश्य ही आयेगी।

*

मैं तुम सबमें द्वार खोलने के लिए पूरा ध्यान देती हूँ, ताकि अगर तुम्हारे अन्दर एकाग्रता का ज़रा-सा भी स्पन्दन हो, तो तुम्हें ऐसे बन्द दरवाज़े के सामने बहुत-बहुत देर तक न ठहरना पड़े जो हिलता तक नहीं, जिसकी चाबी तुम्हारे पास नहीं है और जिसे तुम खोलना नहीं जानते।

दरवाज़ा खुला हुआ है, तुम्हें उस दिशा में देखना-भर होगा। तुम्हें उसकी ओर पीठ नहीं फेरनी चाहिये।

*

मैं किसी की गुरु होने के लिए उत्सुक नहीं हूँ। मेरे लिए सबकी माँ होने का और उन्हें चुपचाप प्रेम की शक्ति द्वारा आगे ले जाने का अनुभव ज़्यादा सहज और स्वाभाविक है।

*

आपके साथ मेरे सम्बन्ध के बारे में आप क्या सोचती हैं?

क्या तुम विश्व-जननी के पुत्र नहीं हो?

जब मैं कहती हूँ कि मैंने किसी को दीक्षा दी है, तो उसका मतलब होता है कि मैंने इस व्यक्ति के आगे अपने-आपको *बिना* बोले प्रकट किया है, और वह यह देखने, अनुभव करने और जानने के योग्य है कि मैं 'कौन' हूँ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ८३, ८५, ८६, ८७

"मैं तुम हूँ"

... मैं सभी स्तरों पर, सभी भूमिकाओं में, परम चेतना से लेकर मेरी अत्यन्त भौतिक चेतना तक तुम्हारे साथ हूँ। यहाँ, पॉण्डिचेरी में, तुम मेरी चेतना को अन्दर लिये बिना श्वास भी नहीं ले सकते। वह सूक्ष्म भौतिक में सारे वातावरण को लगभग भौतिक रूप में भरे हुए है, और यहाँ से दस किलोमीटर दूर झील तक ऐसा है। उसके आगे, मेरी चेतना को भौतिक प्राण में अनुभव किया जा सकता है, उसके बाद मानसिक स्तर पर तथा अन्य उच्चतर स्तरों पर हर जगह। जब मैं यहाँ पहली बार आयी थी तो, मैंने भौतिक रूप से दस किलोमीटर नहीं, दस समुद्री मील की दूरी से श्रीअरविन्द के वातावरण का अनुभव किया था। वह एकदम अचानक, बहुत ठोस रूप में, एक शुद्ध, प्रकाशमय, हलका, ऊपर उठाने वाला वातावरण था।

बहुत समय पहले श्रीअरविन्द ने आश्रम में हर जगह यह अनुस्मारक लगवा दिया था जिसे तुम सब जानते हो : "हमेशा ऐसे व्यवहार करो मानों श्रीमाँ तुम्हें देख रही हैं, क्योंकि, वास्तव में, वे हमेशा उपस्थित हैं।"

यह केवल एक वचन नहीं है, कुछ शब्द नहीं हैं, यह एक तथ्य है। मैं तुम्हारे साथ बहुत ठोस रूप में हूँ और जिनमें सूक्ष्म दृष्टि है वे मुझे देख सकते हैं।

सामान्य रीति से मेरी 'शक्ति' हर जगह कार्यरत है, वह हमेशा तुम्हारी सत्ता के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को इधर-उधर हटाती और नये रूप में रखती तथा तुम्हारे सामने तुम्हारी प्रकृति के नये-नये रूपों को निरूपित करती रहती है ताकि तुम देख सको कि क्या-क्या बदलना, विकसित करना या त्यागना है।

इसके अलावा, मेरे और तुम्हारे बीच एक विशेष सम्बन्ध है, उन सबके साथ जो मेरी और श्रीअरविन्द की शिक्षा की ओर मुड़े हुए हैं— और, यह भली-भाँति जानी हुई बात है कि इसमें दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता, तुम फ़्रांस में हो सकते हो, दुनिया के दूसरे छोर पर हो सकते हो या पॉण्डिचेरी में, यह सम्बन्ध हमेशा सच्चा और जीवन्त रहता है। और हर बार जब पुकार आती है, हर बार जब इसकी ज़रूरत हो कि मुझे पता लगे ताकि मैं एक शक्ति, एक प्रेरणा या रक्षण या कोई और चीज़ भेजूँ, तो अचानक मेरे पास एक सन्देश-सा आता है और मैं जो ज़रूरी होता है वह कर देती हूँ। यह तो स्पष्ट है कि ये सन्देश मेरे पास किसी भी समय पहुँचते रहते हैं, और तुमने कई बार मुझे अचानक किसी वाक्य या काम के बीच रुकते देखा होगा; यह इसलिए कि कोई चीज़ मेरे पास आती है, कोई सन्देश आता है और मैं एकाग्र हो जाती हूँ।

जिन लोगों को मैंने शिष्य-रूप में स्वीकार कर लिया, जिन्हें "हाँ" कह दी है, उनके साथ सम्बन्ध से बढ़ कर कुछ और होता है, उनके साथ मुझसे निकला कुछ अंश रहता है। जब कभी ज़रूरत हो तो यह अंश मुझे चेतावनी देता है और मुझे बतलाता है कि क्या हो रहा है। वास्तव में मुझे सारे समय सूचनाएँ मिलती रहती हैं, परन्तु मेरी सक्रिय स्मृति में वे सब अंकित नहीं होतीं। तब तो मेरे अन्दर बाढ़ आ जायेगी; भौतिक चेतना फ़िल्टर या छन्ने का काम करती है। चीज़ें एक सूक्ष्म स्तर पर अंकित होती हैं, वे वहाँ अव्यक्त अवस्था में रहती हैं, मानों कोई संगीत ध्वन्यांकित तो कर लिया गया हो पर बजाया न गया हो, और जब मुझे अपनी भौतिक चेतना में कुछ जानने की ज़रूरत होती है, तो मैं इस सूक्ष्म भौतिक स्तर के साथ सम्पर्क जोड़ती हूँ और रेकॉर्ड बजने लगता है। तब मैं देखती हूँ कि चीज़ें कैसी हैं, समय के साथ उनका क्या विकास हुआ और उनका वास्तविक परिणाम क्या है। और अगर किसी कारण से तुम मुझे चिट्ठी लिखो और मेरी सहायता माँगो और मैं उत्तर दूँ "मैं तुम्हारे साथ हूँ", तो इसका मतलब यह है कि तुम्हारे साथ की सञ्चार-व्यवस्था सक्रिय हो गयी है, तुम कुछ समय के लिए, जितने समय के लिए ज़रूरी हो, मेरी सक्रिय चेतना में आ जाते हो।

और मेरे और तुम्हारे बीच का यह सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। ऐसे

लोग हैं जिन्होंने विद्रोह की अवस्था में बहुत पहले आश्रम छोड़ दिया था, और फिर भी मैं उनके बारे में टोह लेती रहती हूँ, उनकी देखभाल करती हूँ। तुम्हें कभी ऐसे ही छोड़ नहीं दिया जाता।

श्रद्धा की शक्ति

सच तो यह है कि मैं अपने-आपको हर एक के लिए ज़िम्मेदार मानती हूँ, उनके लिए भी जिनसे मैं अपने जीवन में बस निमिष-मात्र के लिए ही मिली हूँ।

यहाँ एक बात याद रखो। श्रीअरविन्द और मैं एक ही हैं, एक ही चेतना हैं, एक और अभिन्न व्यक्ति हैं। हाँ, जब यह शक्ति या यह उपस्थिति, जो एक ही है, तुम्हारी वैयक्तिक चेतना में से गुज़रती है, तो वह एक रूप, एक आकार धारण कर लेती है जो तुम्हारे स्वभाव, तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारी आवश्यकता, तुम्हारी सत्ता के विशेष मोड़ के अनुसार होता है। तुम्हारी वैयक्तिक चेतना, यह कहा जा सकता है, एक छन्ने या एक सूचक की तरह होती है जो अनन्त दिव्य सम्भावनाओं में से एक सम्भावना को चुन कर निश्चित कर लेती है। वस्तुतः भगवान् हर एक व्यक्ति को वही देते हैं जिसकी वह उनसे आशा करता है। अगर तुम यह मानते हो कि भगवान् बहुत दूर और क्रूर हैं, तो वे दूर और क्रूर होंगे, क्योंकि तुम्हारे चरम कल्याण के लिए यह ज़रूरी होगा कि तुम भगवान् के कोप का अनुभव करो; काली के पुजारियों के लिए वे काली होंगे और भक्तों के लिए 'परमानन्द'। और ज्ञानपिपासु के लिए वे 'सर्वज्ञान' होंगे, मायावादियों के लिए परात्पर 'निर्गुण ब्रह्म'; नास्तिक के साथ वे नास्तिक होंगे और प्रेमी के लिए प्रेम। जो उन्हें हर क्षण, हर गति के आन्तरिक निदेशक के रूप में अनुभव करते हैं उनके लिए वे बन्धु और सखा, हमेशा सहायता करने के लिए तैयार, वफ़ादार दोस्त रहेंगे। और अगर तुम यह मानो कि वे सब कुछ मिटा सकते हैं, तो वे तुम्हारे सभी दोषों, तुम्हारी सभी भ्रान्तियों को, बिना थके, मिटा देंगे, और तुम हर क्षण उनकी अनन्त 'कृपा' का अनुभव कर सकोगे। वस्तुतः भगवान् वही हैं जो तुम अपनी गहरी-से-गहरी अभीप्सा में उनसे आशा करते हो।

और जब तुम उस चेतना में प्रवेश करते हो जहाँ तुम सभी चीज़ों

को एक ही दृष्टि में देख सको, मनुष्य और भगवान् के बीच सम्बन्धों की अनन्त बहुलता को देख सको, तो तुम देखते हो कि यह सब अपने पूरे विस्तार में कैसा अद्‌भुत है। अगर तुम मानवजाति के इतिहास को देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि मनुष्य जो समझे हैं, उन्होंने जिसकी इच्छा और आशा की है, जिसका स्वप्न लिया है, उसके अनुसार भगवान् कितने विकसित हुए हैं। वे किस तरह जड़वादी के साथ जड़वादी रहे हैं और हर रोज़ किस तरह बढ़ते जाते हैं और जैसे-जैसे मानव-चेतना अपने-आपको विस्तृत करती है वे भी दिन-प्रतिदिन निकटतर और अधिक प्रकाशमान होते जाते हैं। हर एक चुनाव करने के लिए स्वतन्त्र है। सारे संसार के इतिहास में मनुष्य और भगवान् के सम्बन्ध की इस अनन्त विविधता की पूर्णता एक अकथनीय चमत्कार है। और यह सब मिला कर भगवान् की समग्र अभिव्यक्ति के एक क्षण के समान है।

भगवान् तुम्हारी अभीप्सा के अनुसार तुम्हारे साथ हैं। स्वभावतः, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे तुम्हारी बाह्य प्रकृति की सनकों के आगे झुकते हैं—यहाँ मैं तुम्हारी सत्ता के सत्य की बात कह रही हूँ। और फिर भी, कभी-कभी भगवान् अपने-आपको तुम्हारी बाहरी अभीप्सा के अनुसार गढ़ते हैं, और अगर तुम, भक्तों की तरह, बारी-बारी से मिलन और बिछोह में, आनन्द की पुलक और निराशा में रहते हो, तो भगवान् भी तुमसे, तुम्हारी मान्यता के अनुसार, बिछुड़ेंगे और मिलेंगे। इस भाँति मनोभाव, बाहरी मनोभाव भी, बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग यह नहीं जानते कि श्रद्धा कितनी महत्त्वपूर्ण है, कितना बड़ा चमत्कार है, चमत्कारों को जन्म देने वाली है। अगर तुम यह आशा करते हो कि हर क्षण तुम्हें ऊपर उठाया जाये और भगवान् की ओर खींचा जाये, तो वे तुम्हें उठाने आयेंगे और वे बहुत निकट, निकटतर, सदैव निकट होंगे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ७५-७९

शरीर की शुद्धि के बारे में सोच-विचार मत करो। श्रीमाँ के लिए प्रेम हृदय और शरीर दोनों को शुद्ध कर देता है। भूतकाल में जो कुछ हुआ हो वह रत्ती-भर मायने नहीं रखता।

श्रीअरविन्द

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

जून

१. योग का मार्ग हमेशा ही आन्तरिक और बाह्य कठिनाइयों से भरा होता है और साधक को उनका सामना करने के लिए शान्त, सुदृढ़ तथा ठोस बल का विकास करना होता है।

२. यह जानना कि हम क्यों जीते हैं : भगवान् की खोज और उनके साथ सचेतन ऐक्य।
एकमात्र इसी उपलब्धि पर एकाग्र होने की अभीप्सा करना।
सभी परिस्थितियों को इस लक्ष्य तक पहुँचने के साधन में रूपान्तरित करना जानना।

३. प्रभो, मेरे अन्दर तुम्हें जानने की तीव्र इच्छा जागे।
मैं अपना जीवन तुम्हारी सेवा के लिए अर्पित करने की अभीप्सा करती हूँ।

४. भगवान् की सहायता हमेशा सच्ची अभीप्सा को उत्तर देती है।

५. हर एक पहले अपने लिए ज़िम्मेदार है; और अगर तुम औरों की सहायता करने की अभीप्सा रखते हो तो तुम जैसा होना चाहिये उसका उदाहरण बन कर ही सबसे अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें सहायता दे सकते हो।

६. भागवत कृपा हमेशा ही है जो अद्‌भुत रूप से उन सबके लिए प्रभावकारी है जो सच्चे और निष्कपट हैं।

७. भगवान् के बिना हम सीमित, असमर्थ और अवश सत्ताएँ हैं, भगवान् के साथ, अगर हम अपने-आपको पूरी तरह से उन्हें सौंप दें, तो सब कुछ सम्भव है और तब हमारी प्रगति अन्तहीन होती है।

८. तुम्हें अपने अध्यवसाय में सच्चा होना चाहिये; तब तुम आज जो चीज़ें नहीं कर सकतीं उन्हें नियमित और आग्रहपूर्ण प्रयासों के बाद एक दिन कर सकोगी।

९. शान्त और सुखी जीवन के लिए, प्रेम करने के आनन्द के लिए प्रेम

करना सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी चीज़ों के अन्दर भगवान् से प्रेम करना।

१०. सुखी तथा सफल जीवन के लिए सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझने वाली प्यास ज़रूरी हैं। सबसे बढ़ कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति की सम्भावना असीम है। प्रगति यौवन है, तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।

११. सदा सीखना, बौद्धिक नहीं, मनोवैज्ञानिक रूप से, स्वभाव में प्रगति करना, अपने अन्दर गुण पैदा करना और दोष ठीक करना ताकि हर चीज़ हमें अज्ञान और अक्षमता से मुक्त करने के लिए अवसर हो सके—तब जीवन बहुत अधिक रुचिकर और जीने-योग्य बन जाता है।

१२. पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।

१३. हर एक के लिए पहली आवश्यकता है उसका अपना रूपान्तर, और जगत् की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अपने-आप भगवान् को उपलब्ध करना।

१४. हमारी सत्ता की गहराइयों में, चिन्तन की नीरवता में, एक ज्योतिर्मयी शक्ति हमारी चेतना में एक विशाल और ज्योतिर्मयी शान्ति की बाढ़ ले आती है जो सभी तुच्छ प्रतिक्रियाओं पर अभिभूत होती है और हमें भगवान् के साथ ऐक्य के लिए तैयार करती है—जो वैयक्तिक जीवन का एकमात्र प्रयोजन है। अतः, जीवन का प्रयोजन और उद्देश्य दुःख और संघर्ष नहीं बल्कि एक सर्वशक्तिमान् और सुखी उपलब्धि है।

१५. पथ पर मनुष्य जो पहली चीज़ सीखता है, वह यह है कि देने का आनन्द पाने के आनन्द से कहीं अधिक बढ़ कर है।

१६. परम सुख है भगवान् का सच्चा सेवक बनने में।
अपने-आपको ऐसी चीज़ों से दूर रखना जो तुम्हें भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण करने से रोकती हैं।

१७. लक्ष्य का होना पर्याप्त नहीं है। हमेशा अपनी सभी गतिविधियों के मूल में जाने की कोशिश करते हुए लक्ष्य को पाने का संकल्प होना चाहिये।

१८. जब सारी सत्ता, अपने सभी भागों और सभी क्रियाओं में समस्त

सच्चाई के साथ भगवान् से कह सके :
"तुम जो चाहो, तुम जो चाहो।"
तब तुम सच्ची निष्ठा के मार्ग पर होते हो।

१९. धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है, लेकिन जो प्रगति करनी है उसके लिए जीवन कितना संक्षिप्त है!

२०. प्रभो! हम अनुनय करते हैं कि हमारे अन्दर कोई भी चीज़ तुम्हारी उपस्थिति को अस्वीकार न करे और हम वही बन सकें जो तुम हमें बनाना चाहते हो।
वर दो कि हमारे अन्दर सब कुछ तुम्हारी इच्छा का अनुमोदन करे।

२१. प्रभो, वर दो कि हम जान सकें कि तुम ही हमारा जीवन हो, हमारी चेतना और हमारी सत्ता हो, और तुम्हारे बिना सब कुछ भ्रान्ति है।

२२. अमरता की तैयारी के लिए शरीर की चेतना को अपने-आपको पहले शाश्वत चेतना के साथ एकात्म करना चाहिये।

२३. हमेशा और हर स्थिति में वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं, यही परम पावन शान्ति का रस लेने का एकमात्र तरीक़ा है।

२४. फूल अपनी सुगन्धित प्रार्थना और अभीप्सा को आकाश की ओर उठाते हैं।

२५. फूल प्रकृति की आराधना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं।

२६. फूलों के द्वारा प्रकृति अपने-आपको अधिक-से-अधिक सामञ्जस्यमय रूप में प्रकट करती है।

२७. फूलों के साथ प्रेम अपने चैत्य को पाने और उसके साथ मिलने के लिए मूल्यवान् सहायता है।

२८. जीवन को एक फूल की तरह खिलना चाहिये जो अपने-आपको भगवान् के अर्पित करता है।

२९. उदार हृदय हमेशा पुराने दुर्व्यवहारों को भूल जाता है और दोबारा सामञ्जस्य लाने के लिए तैयार रहता है।

३०. सतत और निष्कपट अभीप्सा तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने के एकमात्र उत्तम तरीक़े हैं।
(श्रीअरविन्द)

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नींद के विषय में

यहाँ मैं इस बात का उल्लेख करना चाहूँगा कि कैसे बच्चों को हम नहीं, भगवान् ही शिक्षा देते हैं। मुझे याद है कि एक बार मैं अपने एक मित्र से मिलने के लिए गया। उसकी एक नौ वर्ष की धेवती थी। उसने मेरे लिए कॉफ़ी मँगायी और बच्ची ले आयी। जब वह आ रही थी तो मैंने उसके चारों ओर एक सुन्दर ज्योति देखी। मैंने उससे पूछा, "बच्ची, क्या तुम कोई स्वप्न देखती हो?" "जी हाँ", उसने कहा। "और तुम क्या देखती हो?" मैंने पूछा। उसने कहा, "मैं बिस्तर पर लेट जाती हूँ और भगवान् को यहाँ बुला कर उनसे यहाँ अपने पास सोने के लिए कहती हूँ।" (नौ वर्ष की बच्ची को कौन-सी चीज़ ऐसे सोचने और करने की प्रेरणा देती थी?) मैंने पूछा, "फिर क्या होता है?" उसने कहा, "कभी-कभी मैं सपने में आकृतियाँ देखती हूँ।" (यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं एक महिला को जानता हूँ—यह बरसों पहले की बात है—जिसने मुझसे कहा था कि एक वृद्ध सज्जन उसके स्वप्न में आते थे और उसे राह दिखाया करते थे और वे जो कुछ कहते थे वह हमेशा ठीक निकलता था। तो ऐसी सत्ताएँ होती हैं जिनका किसी-न-किसी कारण हमारे साथ नाता जुड़ जाता है और वे हमारी सहायता करती हैं। कभी-कभी हम अपने दिवंगत पिता या बाबा के सम्पर्क में आ जाते हैं और हमें लगता है कि वे हमें रास्ता दिखा रहे हैं। यह एक और बात है) हाँ, तो मैंने बच्ची से पूछा, "इससे तुम्हें क्या मदद मिलती है?" उसने कहा, "जब मैं अपनी माँ के साथ बाज़ार जाती हूँ तो कोई मुझसे कहता है, 'यह ख़रीदो' और मैं हमेशा वही ख़रीदती हूँ।" मुझे बच्ची की बातों में बहुत रस आ रहा था। उसे भगवान् के साथ एक ऐसे आन्तरिक सम्पर्क का अनुभव होता था जैसा केवल आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित लोग ही पा सकते हैं।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम केवल प्रस्तुत समस्याओं के बारे में ही पथ-प्रदर्शन नहीं पाते बल्कि जीवन के सभी पक्षों में मार्ग-दर्शन पाते हैं। अगर हम सचमुच उच्चतर चेतना की ओर खुल सकें तो वह चुपचाप

हमारे स्वप्नों में इतना अधिक मार्ग-दर्शन कर सकती है जिसकी हमने कभी कल्पना भी न की हो।

अब हम आते हैं नींद की मुद्रा में। माताजी और श्रीअरविन्द ने कहा है कि सोते समय की मुद्रा का बहुत असर होता है। माताजी की मुद्रा देखने में बहुत मज़ा आता था। उनकी कमर एकदम सीधी नहीं होती थी। उनके पास कई तकिये होते थे, एक इधर, एक उधर। मैं कह सकता हूँ कि तकिये नींद को बहुत आरामदेह बना देते हैं। पता नहीं लोग ऐसी छोटी-छोटी बातों के बारे में क्यों नहीं सोचते—कुछ छोटे और कुछ बड़े तकिये तुम्हारी नींद को दस गुना आरामदेह बना देते हैं। तुम्हें उसी तरह सोना चाहिये जैसे माताजी ने बताया है, अपने-आपको बिलकुल शिथिल छोड़ दो। इससे तुम्हारी नींद बहुत आरामदायक हो जाती है, तुम्हें ध्यान करने का अवसर मिलता है और तुम सवेरे ताज़ादम उठते हो। तुम्हें सोने से पहले की तैयारी करनी जाननी चाहिये—यह जानना चाहिये कि रात को ठीक तरह से कैसे सोया जाये और सवेरे कैसे जागा जाये।

सोने का उत्तम तरीक़ा, सवेरे जाग कर सचेतन होने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है? माताजी ने इसके उत्तर में कहा है कि दिन के लिए जो तरीक़ा उत्तम है वही रात के लिए भी उत्तम है। वह है श्रीअरविन्द और माताजी की चेतना के साथ एक होकर ध्यान करो, अपने शरीर के प्रत्येक कोषाणु में उनके साथ एक होकर प्रकाश का आह्वान करो और फिर बिस्तर पर लेट जाओ। नींद के बारे में सोचो तक नहीं, वह तो अपने-आप आ जायेगी। तुम्हें ऐसी अवस्था में रहना चाहिये और सवेरे ऐसी ही अवस्था में उठना चाहिये। अगर तुम यह करो तो सभी ग़लत स्वप्न, निरर्थक स्वप्न अपने-आप ही दूर हो जायेंगे। ध्यान एक परदे की तरह काम करता है और जो चीज़ तुम्हारे आध्यात्मिक विकास के लिए ही नहीं बल्कि भौतिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है केवल वही बनी रहेगी, बाक़ी चीज़ें छन कर अलग हो जायेंगी। और तब तुम्हारे सपनों और अन्तर्दर्शनों की व्याख्या तुम्हें स्वयं मिल जायेगी। तुम्हें उसके लिए न तो परिश्रम करना होगा न ही अपने दिमाग़ को परेशान करना होगा क्योंकि तब तुम ग़लती करोगे ही नहीं। तुम सवेरे उठने पर एक नयी शक्ति, एक नयी प्रदीप्ति, एक नयी आशा का अनुभव करोगे। इसका कुछ दिनों तक अभ्यास करो तब तुम

मेरी बात समझ जाओगे।

हमारे शास्त्र तीन अवस्थाओं की बात करते हैं—जाग्रत्-अवस्था, स्वप्नावस्था और सुषुप्ति-अवस्था। सुषुप्ति वह अवस्था है जिसमें तुम मन के परे के स्तरों और लोकों में जाकर, वहाँ के अनुभव पाकर लौटते हो। अतः, नींद और स्वप्न वे अवस्थाएँ हैं जिनमें तुम्हारी आत्मा, तुम्हारी आध्यात्मिक और भौतिक प्रगति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच सकती हैं। तुम अपनी चेतना के आन्तरिक स्तरों को जाग्रत् अवस्था की अपेक्षा नींद में कहीं अधिक अच्छी तरह व्यष्टिगत रूप दे सकते हो। अतः, हमें अपनी नींद के बारे में सचेतन होने और उसका स्वामी होने की कोशिश करनी चाहिये। (क्रमशः)

—नवजातजी

एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार

(एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थीं और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहाँ के शारीरिक शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयीं। उन्होंने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।)

मधुर माँ,

इन दिनों मुझे अपने दल के काम में कोई रस नहीं आता। मैं बिना उत्साह, केवल कर्तव्य जान कर इस काम को कर रही हूँ। क्या यह ज़्यादा अच्छा न होगा कि मेरी जगह कोई और ले ले? मुझे लगता है कि अगर मैं अपना अच्छे-से-अच्छा न दे सकूँ तो यह बच्चों के साथ न्याय न होगा। आप जो कुछ कहेंगी मैं वही करूँगी।

तुम्हें ज्ञान और अनुभव है और अच्छी तरह सिखाने के लिए ये अनिवार्य शर्तें हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम बहुत अच्छी शिक्षिका हो और अगर तुम बच्चों को सिखाना बन्द कर दोगी तो बच्चों को बहुत अधिक नुक़सान होगा। जारी रखो, और तुम देखोगी कि जल्दी ही फिर से रस लेना शुरू कर दोगी।

प्रेम और आशीर्वाद।

१६ जून १९७१

मधुर माँ,

मेरे अन्दर के इस तूफ़ान को शान्त करो और शान्ति प्रतिष्ठित करो। इस उग्रता को स्थिर, अचञ्चल बनाओ और प्रेम का राज्य होने दो। इस क्षण मैं अपने पूरे हृदय के साथ 'तुम्हारी' सच्ची बालिका होना चाहती हूँ। वर दो कि मैं 'तुम्हारे' योग्य हो सकूँ।

मेरी प्यारी बच्ची,

तुमने जो लिखा है उसे पढ़ कर मुझे बहुत ख़ुशी हुई।

तुम्हारा जन्मदिन सचमुच एक नयी चेतना में तुम्हारा जन्म हो, उस सत्य चेतना में जो तुम्हें 'दिव्य' उपलब्धि की ओर ले जाये।

लेकिन इस समय मैं तुमसे यही कहना चाहती हूँ कि मेरा प्रेम और मेरी सहायता सदा मार्ग पर तुम्हारी सहायता करने के लिए तुम्हारे साथ हैं।

आशीर्वाद। २ जुलाई १९७१

(विजया-दशमी के अवसर पर)

यह वह विजय है जो हमें स्वयं अपने ऊपर पानी है ताकि हम केवल भगवान् के होकर रहें।

प्रेम। २९ सितम्बर १९७१

(काली-पूजा)

सृष्टि में महाकाली दिव्य प्रेम को व्यक्त करती हैं; लेकिन यह प्रेम इतना शक्तिशाली और उदात्त है कि अधिकतर मनुष्य इससे डरते हैं।

१८ अक्तूबर १९७१

हम धरती पर प्रगति करने और अपने-आपको उत्तरोत्तर जीवनों में अधिक पूर्ण बनाने के लिए हैं। जो कुछ हम इस बार नहीं कर सकते उसे अगली बार करेंगे; और इस बार हम जो भी प्रगति कर लेंगे वह तब हमारी सहायता करेगी।

काली हमेशा उन सबकी सहायता करती हैं जो उन्हें पुकारते हैं और

उनकी सहायता से प्रगति अधिक तेज़ी से होती है।

आशीर्वाद। १५ नवम्बर १९७१

व्यष्टिगत जीवन इसलिए बनाया गया है ताकि भगवान् को पाने और उनके साथ एक होने के आनन्द को सम्भव बनाया जा सके।

आशीर्वाद। २९ नवम्बर १९७१

श्रीअरविन्द ने इस विषय पर क्या लिखा है उसे सावधानी से पढ़ कर, मानव पूर्णता क्या होनी चाहिये इस विषय में स्पष्ट धारणा विकसित करो।

अपने स्वभाव का निकट से निरीक्षण करके इस बारे में जानकारी प्राप्त करो कि किस चीज़ को रूपान्तरित करने की ज़रूरत है ताकि आदर्श स्थिति प्राप्त हो जाये। तब सच्चाई के साथ काम में लग जाओ, अपनी भीतरी और बाहरी गतिविधियों का अवलोकन करती चलो और हर बार जब तुम कोई ऐसी चीज़ देखो जो तुम्हारे उस आदर्श का विरोध करती है जो तुमने अपने आगे रखा है तो उसे ठीक करने का प्रयास करो।

आशीर्वाद। १ दिसम्बर १९७१

मधुर माँ,

युद्ध[१] के बारे में हमें क्या मनोभाव अपनाना चाहिये?

मनोवैज्ञानिक रूप से बस एक ही चीज़ करनी चाहिये—स्थिर, अचल श्रद्धा बनाये रखो।

भौतिक रूप से, यह परिस्थितियों पर निर्भर होगा।

आशीर्वाद। ३ दिसम्बर १९७१

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ४७८-८०

नीरवता में सबसे बड़ी अभीप्सा होती है।
हम प्रार्थना करते हैं कि उसमें अधिक-से-अधिक ग्रहणशीलता भी हो।

श्रीमाँ

[१] भारत और पाकिस्तान का युद्ध।

एकान्त

(हमारे विद्यालय की भूतपूर्व छात्रा द्वारा रचित)

मुझे सुबह के दो बजे का ज्ञान है
मेरा एकान्त मुझसे मिलने आता है;
उसका पथ मैंने याद कर लिया है,
जैसे वह धैर्य से इन्तज़ार करता है
जब तक मैं अपनी खिड़की न खोल लेती हूँ,
धीमे से वह आकर निरीक्षण करता है
कैसे उसकी अनुपस्थिति मुझे परेशान करती है।
मेरी मेज़, बिस्तर, किताबों से गुज़रता
हर कोना उसके स्पर्श से मुग्ध होता
और जल्द ही मेरा पूरा कमरा गूँजता
और उसकी अनुभूति से आवृत हो जाता।
फिर, वह मेरे पास आकर मुझे देखता
और उसकी आँखों में मुझे अपने राज़ मिलते
अपने डर, अपनी अभिलाषाएँ और यादें
मुझे अपना एक भूला हुआ हिस्सा मिलता,
वह हिस्सा जो मैं दुनिया से छिपाती थी।
उसकी आँखों की गहराइयों में मुझे वह दीखा
जो मेरी आँखों ने अनदेखा कर दिया था,
उसकी उपस्थिति की चेतना में मैंने पाया
वह प्यार जिसके लिए मैं तरस गयी थी।
और उसकी बाँहों की सान्त्वना में
मुझे आख़िर अपना घर मिल गया।
यह था मेरा एकान्त, मेरा इतना प्रिय बन्धु
कि हमारे हिस्से नहीं किये जा सकते थे,
और यदि वह सशरीर होता या नहीं, मेरे लिए
वह मेरे हर क़दम में साथ रहता—

यदि मैं लोगों के बीच होती,
या अकेली किसी कोने में होती,
वह मेरा हाथ थामे मेरे पास होता,
उसके साथ मैं कभी अकेली नहीं थी।
यह था मेरा एकान्त, मेरा एकमेव बन्धु
और हर सुबह दो बजे वह मुझसे मिलने आता।

—शाम्भवी

दोनों की प्राप्ति हो गयी!

(श्रीकृष्ण के बारे में लिखते समय श्री सुदर्शन चक्रजी की लेखनी तो कृष्णमय ही हो जाती है। उन्हीं की लिखी एक कहानी के बीज को लेकर लेखिका ने अपने शब्दों में पल्लवित-पुष्पित किया है।)

प्रभु का नाम ही है लीलामय, और कितने भाग्यवान् हैं हम मनुष्य कि उन्होंने इस धरती को अपनी लीला का रंगमंच चुना। युग-युगान्तर से उनकी अनुकम्पाभरी कथाओं की साक्षी रही है यह भारतभूमि।

देवर्षि नारद ने एक दिन सत्यभामा जी को स्मरण कराया—"देवि! उस दिन आपने कहा था कि श्रीद्वारिकाधीश इतने आपके हैं कि आप उनका दान भी कर सकती हैं, क्या यह बात सच है?"

सत्यभामा जी ने मुस्कुरा कर कहा—"देवर्षि! मैं आज ही निर्णय कर लूँगी।" नारद जी के जाने के बाद सत्यभामा ने अपने आराध्य से पूछा—"आप कहते तो हैं कि मैं तुम्हारा ही हूँ किन्तु..."

"इसमें किन्तु परन्तु क्या देवि?" श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा।

"मैं आपका दान कर दूँ, स्वीकार्य है आपको?"

"करके देख लो," द्वारिकाधीश हँस पड़े, "कल्पतरु भी तो तुमने इसी अभिप्राय से मँगवाया है।"

लीला में लीला!! प्रभु का दान होगा? सत्यभामा जी ने श्रीकृष्ण की सभी रानियों से स्वयं जा-जाकर अनुमति ली। अन्य सभी गुरुजनों

को आमन्त्रित किया। और अगले दिन जब देवर्षि पधारे तो महारानी ने उनका विधिवत् पूजन-अर्चन कर उनको भोजन करवाया। फिर श्रीकृष्ण के कण्ठ में पुष्पमाला डाल उन्हें कल्पवृक्ष से बाँध दिया। ऐसा करते ही वह कल्पवृक्ष इतना छोटा हो गया कि यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि उस नन्हें से पारिजात के पौधे को श्रीकृष्ण के चरणों में बाँध दिया और हाथ में जल लेकर सम्पूर्ण संकल्प पढ़ कर "इमं स्वपतिं नारदाय ब्रह्मपुत्राय प्रददे" कहते हुए उन्होंने पति का दान कर दिया। हज़ारों गउएँ तथा विपुल स्वर्ण-राशि भी देवर्षि को दी गयीं।

इस लीला के समय देवतागण भी स्वर्ग से पुष्पवृष्टि कर रहे थे। जयध्वनि, शंखनाद तथा अन्य मंगल वाद्यों से दिग्-दिगन्त मुखरित हो उठा। सम्पूर्ण विधि के समाप्त होने पर देवर्षि आसन से उठे और वीणा उठा कर श्रीकृष्ण से बोले—"केशव, महारानी सत्यभामा ने आपको मुझे दान दे दिया है, अब आप मेरे हो गये, अब आपको मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।"

नतमस्तक श्रीकृष्ण उठे और देवर्षि के पीछे-पीछे चल पड़े।

यह सारा नाटक था, कम-से-कम देवी सत्यभामा ने तो यही सोचा था, अतः जब श्रीकृष्ण चलने लगे तो वे मुस्कुरा कर बोलीं—"देवर्षि, अब आप हम पर कृपा कर प्रभु को हमें वापस कर दें, इनके बदले में जितना धन-धेनु आप चाहें हम सहर्ष आपको समर्पित करेंगे।"

नारद जी ने देवी सत्यभामा के सामने हाथ जोड़ दिये, कहा—"देवि! मैं हूँ अनासक्त, धन-धान्य लेकर क्या करूँगा भला? आपने तो स्वयं देख लिया कि श्रीकृष्ण का दान करते समय जो विपुल धन-राशि आपने मुझे प्रदान की थी वह भी मैंने यहीं बाँट दी। प्रभु के साथ-साथ आपने मुझे जो पारिजात-तरु दान में दिया उसे मैं आपको निस्संकोच वापस कर देता हूँ, उससे आपको सृष्टि के सभी वैभव प्राप्त हो जायेंगे, लेकिन जो जन्म-जन्मों की साधना से भी नहीं मिलते उन श्रीकृष्ण को पाकर उन्हें भला मैं कैसे लौटा सकता हूँ?"

अब तो सत्यभामा जी आकुल-व्याकुल हो उठीं, खेल-खेल में किया गया नाटक यह रूप ले लेगा ऐसी तो किसी ने कल्पना तक न की थी!!

व्यग्र होकर सत्यभामा जी बोल उठीं—"देवर्षि! आपने ही तो कहा था कि भगवती उमा ने भी अपने स्वामी को इसी प्रकार आपको दान में दिया

था और फिर आपने उन्हें लौटा भी दिया था।"

"यह बात बिलकुल सच है महारानी, महर्षि कश्यप को भी इसी प्रकार देवमाता अदिति ने मुझे दान में दिया था, मैंने उन्हें भी लौटा दिया, लेकिन आपने यहाँ एक तथ्य पर सम्भवतः ध्यान नहीं दिया।" देवर्षि बोले।

"कौन-से तथ्य पर?" सत्यभामा जी पलट कर पूछ बैठीं।

"जब आपने कल्पतरु के साथ प्रभु को दान में दिया तो उस मन्दारतरु का आकार कितना छोटा हो गया था। अर्थात् स्वयं पारिजात, जो सम्पूर्ण त्रिलोक प्रदान कर सकता है वह भी उन देवाधिदेव कृष्ण के सम्मुख कितना नगण्य है, और अब आप उन्हीं सर्वेश्वर को मुझसे वापस माँग रही हैं!!"

"अब क्या होगा?" यही प्रश्न वहाँ उपस्थित सभी लोगों के हृदयों को मथ रहा था।

सभा का वातावरण गम्भीर हो उठा। क्रन्दन का मौन स्वर उस विशाल मण्डप के खम्भों से टकराने लगा, एक ऐसी कातरता का वितान उस सभा-भवन में छा गया कि देवर्षि भी गभीर सोच में पड़ गये। कुछ पलों के मौन के बाद उनकी वाणी गूँज उठी—"देवि! आपकी कातरता मुझे भी विह्वल बनाये दे रही है। मैंने एक मार्ग सोचा है, आप इन सर्वेश्वर को तराज़ू के एक पलड़े में बिठा कर इनके भार का द्रव्य मुझे दे दें। तब ये फिर से आपके हो जायेंगे।"

देवर्षि के इस प्रस्ताव को सुन कर सत्यभामा जी की बाँछें खिल गयीं। वे यही तो चाह रही थीं, कृतज्ञता के आँसू टपक गये। कुछ देर पहले निराशा की मूर्ति बनी सभी रानियों के हृदयों में उत्साह का ऐसा सागर उमड़ा कि पलक झपकते न झपकते राजभवन में धन-धान्य, हीरे-जवाहरात का अम्बार लग गया। आख़िर श्रीकृष्णचन्द्र को तोलना था!

लेकिन यह क्या! वह सारा सोना, वे सारे मणि-माणिक्य उन प्रभु के आगे मानों अपना सारा भार, अपनी सारी चमक खो बैठे। श्रीकृष्ण का पलड़ा भूमि से तिल-मात्र भी न हिला। अब दूसरे पलड़े में और कुछ रखने का स्थान तक न था, देवर्षि बोल उठे—"देवि सत्यभामा, अब इस पलड़े में भौतिक स्थान नहीं है, लेकिन आप सम्पूर्ण मन से जिस चीज़ का संकल्प करेंगी वह वस्तु अपना भार इस पलड़े पर दर्शायेगी।" सत्यभामा संकल्प करती गयीं, द्वारिका का सम्पूर्ण राज्यकोष, यहाँ तक कि सम्पूर्ण द्वारिका

भी संकल्प में दे डाली, वहाँ उपस्थित सभी ने अपने समस्त भौतिक द्रव्य का संकल्प कर सब कुछ दान में दे दिया, लेकिन श्रीकृष्ण भगवान् का पलड़ा ज्यों का त्यों ज़मीन पर टिका रहा।

चारों तरफ़ से दुःख के बादल घिर आये। "अब क्या होगा" यही एकमात्र प्रश्न पुनः वहाँ उपस्थित प्रत्येक नर-नारी की आँखों में तैरने लगा। महारानी सत्यभामा जी पर तो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। उन्होंने जाकर महारानी रुक्मिणी के पैर पकड़ लिये और बोलीं—"बहन, ऋषि-मुनि कहते हैं कि तुम साक्षात् सिन्धुसुता हो, अब तुम्हीं कोई उपाय सुझाओ।"

रुक्मिणी जी ने पट्टमहिषी को सान्त्वना देकर कहा—"बहन, मैं तो अपने आराधक की चरणसेविका हूँ, स्वयं भी पलड़े में जा बैठूँ फिर भी कुछ न होगा। हाँ, एक उपाय अवश्य है, तुम व्रज के शिविर से किसी को भी बुला लो, वहाँ कोई भी इनका मूल्य देने में समर्थ होगा।"

देवी रुक्मिणी की बात सुनते न सुनते महारानी सत्यभामा पैदल ही दौड़ती चली गयीं और जाकर श्रीराधा के चरण पकड़ लिये उन्होंने। वाणी तो साथ न दे रही थी, आँसुओं ने सब कह डाला।

श्रीराधाजी ने सत्यभामा को अंक में भर लिया और उनकी विह्वलता देख कर जैसी थीं वैसी ही उठ कर उनके संग हो लीं। वे वृषभानुनन्दिनी जब चल रही थीं तो सचमुच ऐसा लग रहा था मानों नारी का समस्त गौरव साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति में ढला हुआ गतिशील हो उठा है। राधा जी ने श्रीकृष्ण को नमन कर उसी महिमान्वित गौरव के साथ दूसरे पलड़े में रखे समस्त द्रव्य को हटाने का आदेश दिया और जब वह पलड़ा बिलकुल ख़ाली हो गया तो उन्होंने अपने कण्ठ में पड़ी वनमाला से एक तुलसीदल तोड़ कर बहुत सावधानी से पलड़े पर रख दिया।

सबकी आँखें यह देख कर आश्चर्य से फटी की फटी रह गयीं कि वह पलड़ा तुरन्त भूमि से जा लगा और जिसमें भगवान् वासुदेव बैठे थे वह ऐसे ऊपर उठ गया मानों उसमें कुछ रखा ही न हो!! सारी धरती ख़ुशी से डोल उठी। देवर्षि ने तुरन्त श्रीकृष्ण के कण्ठ में पड़ी माला निकाल कर सत्यभामा जी से कहा—"लीजिये देवि, केशव आपके हैं, सदैव आपके रहेंगे।"

केशव के तुला से उतरते ही देवर्षि नारद ने दूसरे पलड़े से वह

तुलसीदल इतनी शीघ्रता से उठा कर अपनी जटा में छिपा लिया मानों उन्हें भय हो कि कहीं कोई उनसे वह छीन न ले। और फिर देवर्षि आनन्द-विभोर हो ऐसे झूमे कि धरती-आकाश सब कुछ उनके साथ नाच उठा।

श्रीकृष्ण के दान की यह लीला तो समाप्त हो गयी, लेकिन सत्यभामा जी के हृदय में एक प्रश्न बना रहा। उस दिन तो देवर्षि से उसके समाधान का अवसर न मिला क्योंकि वे ऐसे आनन्दोन्मत्त थे कि कोई भौतिक स्वर उनके कानों को छू तक न रहा था, लेकिन कुछ दिनों के बाद जब फिर से नारद जी का आगमन हुआ तो सत्यभामा जी ने सबसे पहले उनसे यही प्रश्न पूछा—"देवर्षि! श्रीकृष्ण के तुलादान के समय आपने वह तुलसीदल जिस तत्परता से अपनी जटाओं में छिपा लिया था और फिर जिस अतिशय आनन्द में आप डूब गये थे उसका रहस्य मैं आज तक न समझ पायी। भगवन्! कृपया आज आप यह रहस्योद्घाटन करें।"

देवर्षि मुस्कुराये, कुछ पलों के मौन के बाद गद्गद वाणी में बोले—"देवि, आपने उस दिन मुझ पर जो कृपा बरसायी उसके लिए मैं सदैव आपका ऋणी रहूँगा। उस दिन श्रीराधा ने स्वयं अपने कर-कमलों से तुलसी का एक दल रखा नहीं कि भगवान् वासुदेव भारहीन से हो गये। राधा जी ने साक्षात् भक्ति अपने प्रियतम को भेंट की, इतना ही नहीं, साथ-साथ स्वयं अपने-आपको, अपने हृदय को उस पलड़े पर रख दिया था श्रीराधा ने। ऐसा तुलसीदल—जिसका त्रिलोक में कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता—वह मेरे हिस्से आया। देवि! उसमें तो श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनों समाये हुए हैं क्योंकि जहाँ श्रीराधा का हृदय हो वहाँ श्रीकृष्ण ही विराजमान रहते हैं। हे सत्यभामा! आपने मुझे केवल अपने स्वामी का दान किया था, और उन वृषभानुनन्दिनी की कृपा से मुझे सदा-सदा के लिए श्रीराधाकृष्ण दोनों की प्राप्ति हो गयी।"

सत्यभामा जी नतमस्तक हो उठीं और नारद जी अपनी जटाओं में सहेजी अनमोल भेंट का स्पर्श कर फिर से उसी आनन्द-धाम में आकण्ठ डूब गये।

—वन्दना

हे मेरे प्रभु! चाह नहीं मेरी कि—पूरा पथ जान सकूँ।
दीजिये प्रकाश इतना कि हर अगला पग पहचान सकूँ। —*अज्ञात*

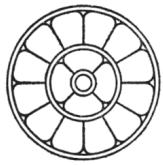

मुँह में मिठाई की अपेक्षा अच्छा कार्य
हृदय के लिए ज़्यादा मीठा होता है।
जो दिवस अच्छा काम किये बिना बीतता है,
वह बिना आत्मा का दिवस होता है।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION

An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO INTERNATIONAL SCHOOL

(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st June 2023
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

SRI AUROBINDO

A New Dawn

An Animation Film

"There are times in a nation's history when Providence places before it one work, one aim, to which everything else, however high and noble in itself, has to be sacrificed. Such a time has now arrived for our motherland ...."

~ SRI AUROBINDO

Work-in-progress at the Animation Film Studio

150 Birth Anniversary

An offering by Sri Aurobindo Society
for the 150th birth anniversary of Sri Aurobindo

For details, visit

www.anewdawn.in

Join hands to make this film. DONATE NOW!